राही मासूम रज़ा

राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली • पटना

वसीयत

मेरा फ़न तो मर गया यारो
मैं नीला पड़ गया यारो
मुझे ले जाके ग़ाज़ीपुर की गंगा की गोदी में सुला देना।
मगर शायद वतन से दूर मौत आये
तो मेरी यह वसीयत है
अगर उस शहर में छोटी-सी एक नद्दी भी बहती हो
तो मुझको
उसकी गोद में सुलाकर
उससे कह देना
कि यह गंगा का बेटा आज से तेरे हवाले है।

मैं तीन माओं का बेटा हूँ। नफ़ीसा बेगम, अलीगढ़ युनिवर्सिटी और गंगा। यह 'सीन : ७५' अपनी तीनों माओं को भेंट करता हूँ। नफ़ीसा बेगम मर चुकी हैं। अब साफ़ याद नहीं आतीं। बाकी दोनों माएँ जिन्दा हैं और याद भी हैं।

—राही मासूम रज़ा

भूमिका

जिसको देखिए,
जिससे मिलिए,
औरों-जैसा लगता है।
इस बस्ती में
जैसे किसी की अपनी कोई पहचान नहीं।

सीढ़ियों पर
फिर किसी की चाप है।
फिर कोई बे-चेहरा होगा,
मुँह में होगी जिसके मक्खन की जबाँ।
सीने में होगा जिसके एक पत्थर का दिल।
आयेगा,
और मुस्कराकर,
मेरे दिल का एक वरक ले जायेगा।

—राही मासूम रज़ा

फेड इन

खिड़की की सलाखों के उधर, ग्रिल के उस पार, नारियलों के झुण्ड तक उतरकर चाँद रुक गया था और अली अमजद खिड़की की सलाखों से अपना चेहरा लगाये, नारियल के झुण्ड मे उतरे हुए चाँद को देख रहा था। यह पता नही कि अली अमजद कमरे के अन्दर कद था या चाँद कमरे के बाहर।

शायद दोनों ही गिरफ्तार थे ! एक कमरे के अन्दर और दूसरा कमरे के बाहर। चाँद में जिन्दगी नही, और इधर कुछ दिनों से अली अमजद ने भी, अपने-आपको जिन्दों में गिनना छोड दिया था और शायद इसीलिए इधर कुछ दिनों से, उसे चाँद अच्छा लगने लगा था !

कमरे मे गयी रात का सन्नाटा था। गयी रात का सन्नाटा कमरे के बाहर भी था। खजूरों का झुण्ड चुप था। पुराने किले का खँडहर चुप था। खँडहर की कमर में बाँहें डाले हुए वह सड़क चुप थी जो बिला किसी वजह के उस खाड़ी तक जाके यकायक खत्म हो जाती है जिसमें कभी मछेरो की हरे, पीले, गेरुये और तिरंगे झण्डोवाली नौकाएँ भी नहीं दिखायी देतीं। कभी वह खाड़ी अवश्य किसी काम की रही होगी नहीं तो उसके मुँह पर किला क्यों बनाया गया होता ! कभी नौकाएँ आती रही होंगी उस खाड़ी में और तभी वहाँ तक एक कच्ची सड़क बनायी गयी होगी जिस पर स्वतन्त्र भारत की एक कारपोरेशन ने तारकोल और कंक्रीट का गिलाफ चढ़ा दिया और वह सडक एक बा-इज्जत सड़क हो गयी। और जब वह सड़क बिना किसी कारण के बाइज्जत हो गयी तो उसका नाम रखना भी जरूरी हो गया ! तो डेढ़-दो सौ बरस तक बेनाम जो

करने के वाद एकदम से उस सड़क का नाम पड़ गया ! सिमेंट का एक वडा-सा वोर्ड वना और उस पर रोमन, देवनागरी, और मराठी अक्षरों में 'लाला अशरफीलाल मार्ग' लिख दिया गया। एक उपमन्त्री ने नाम के उस वोर्ड का उद्घाटन किया और उद्घाटन के फौरन ही वाद वह उपमन्त्री और सड़क पर वसनेवाले तमाम लोग उस सड़क का नाम भूल गये और नाम के शानदार वोर्ड का मजवूत स्तम्भ कुत्तों के मूतने के काम में आने लगा।

कारपोरेशन से न किसी ने यह पूछा कि इस सड़क का नाम रखने की क्या जरूरत थी और न यही पूछा कि यह लाला अशरफीलाल कौन हैं, इस सड़क के मेक-अप और नामकरण पर कुल मिलाकर तीन लाख, सत्तासी हजार, आठ सौ सोलह रुपये, सवा चार आने खर्च हुए—सवा चार आने यूं कि जिन दिनों की यह वात है, उन दिनों नया पैसा नहीं चला था और आने-पाई ही में हिसाव हुआ करता था हालाँकि उन दिनों की जवान पीढ़ी ने पाई की सूरत भी नहीं देखी थी। विद्यार्थियों ने वस, यह सुन रखा था कि पाई भी कोई चीज़ होती है और हिसावे-तिजारत में वहुत काम आती है। चार पाई का एक पैसा। चार पैसों का एक आना। चार आनों की एक चवन्नी। दो चवन्नियों की एक अठन्नी। दो अठन्नियों का एक रुपया। चवन्नी और इकन्नी के वीच में एक दुअन्नी। इकन्नी और पैसे के वीच में एक अधन्नी भी हुआ करती थी। तव हिसाव करने में वड़ा मजा आया करता था। पाई से रुपये तक एक सीढ़ी चढ़ जाना पड़ता था, इसीलिए पैसे और रुपये के वीच की कड़ियाँ गायव हो जाने से हिसाव का सारा रस सूख गया। और हिसाव का रस सूख जाने का फायदा उठाया सेठ-साहूकारों ने। जव तक लोग नये पैसे का मिजाज समझें-समझें, कीमतें आसमान पर चली गयीं और हर दमड़ीलाल लाला अशरफीलाल वन गया ! और जव हमारे मार्गवाले लाला का देहान्त दिल की गति वन्द होने से हुआ तव सारे देश को पहली वार पता चला कि लालाजी के सीने में कोई दिल भी था ! पत्र-पत्रिकाओं को वातें वनाने का मौक़ा मिल गया ! एक पत्रकार ने लिखा कि जव अल्लाह ने अशरफीलाल का पुतला वनाया तो स्टाक-रूम से खवर आयी कि स्टाक में कोई दिल ही नहीं है।

यहाँ पुतला तयार था। बिल्टी भेजी जा चुकी थी। डेलिवरी की तारीख पड चुकी थी। इसलिए अल्लाह मियाँ ने दिल की जगह मलका विक्टोरिया वाला चाँदी का एक रुपया रखकर अशरफीलाल को बुक कर दिया। यही कारण था कि लालाजी ने जिस चीज को हाथ लगाया वह रुपया बन गयी। परन्तु इससे यह मतलब न निकाला जाये कि लालाजी ने घर में कोई टकसाल डाल ली थी। नहीं-नहीं। लालाजी ऐसे आदमी नहीं थे। वह बडे धार्मिक महापुरुष थे। जात-पाँत, धर्म-अधर्म, छूत-अछूत का भेद-भाव नहीं मानते थे! हरिजन हो या शर्मा ब्राह्मण सबसे बराबर सूद लेते थे, सब पर बराबर नालिश करते थे और सबके यहाँ बराबर कुर्की लाते थे। उनके गाँव महाराजगंज की चमटोली (चमारटोली) में भारतमाता का जो सजीला और चमचमाता हुआ मन्दिर है उसका सारा खर्च लाला अशरफीलाल ही ने उठाया था। उनके शहर में जो मोमिन अंसार नेशनल हायर सेकेंड्री स्कूल है वह लालाजी ही की दान की हुई जमीन पर है। लालाजी ने कई गोशालाएँ और धर्मशालाएँ भी बनवायी…और जिन दिनों निकाह तक के लिए चीनी मुश्किल से मिलती थी, उन दिनों भी लाला अशरफीलाल की तरफ से महाराजगंज की चीटियों को रोज पक्के सेर की एक पंसेरी चीनी खिलायी जाया करती थी। कहते हैं कि लालाजी के देहान्त के बाद भी चीटियों के गोल महीनों तक उन रास्तों पर लालाजी का इन्तजार करते रहे…

दूसरे महायुद्ध में लालाजी ने बडा पैसा बनाया। उन्हें कई फौजी ठेके मिल गये। और वह आदमी से बड़े आदमी बन गये। परन्तु उन्हीं दिनों उन्होंने यह भाँप लिया कि भारत अब आजाद हुए बिना नहीं मानेगा और देश पर गांधी की पार्टी राज करेगी, तो उन्होंने कई बडे नेशनलिस्टों की तरह अंग्रेजों से कुट्टी कर ली। रायसाहबी लौटाके जेल चले गये! और चार महीने बारह दिन जेल में रहकर सन् पैंतालीस की तेरह दिसम्बर को छूटे तो देशभक्तों में गिने जाने लगे। सन् बावन के चुनाव में उनका बड़ा बेटा एम. पी., छोटा बेटा एम. एल. ए. हो गया और खुद लालाजी का स्वर्गवास हो गया।

देश नया-नया आजाद हुआ था। आजादी के फौरन बाद है

वड़े आदमियों की पैदावार एकदम से बढ़ गयी थी और सड़कों की गिनती में कोई खास वढ़ोती नहीं हुई थी। नतीजे में वड़े आदमी ज्यादा हो गये और सड़कें कम पड़ गयीं। तो एक-एक सड़क के दो-दो, तीन-तीन नाम रक्खे गये ! इस चौराहे से उस चौराहे तक यदि सड़क का नाम 'मौलाना अब्दुल खालिक़ मार्ग' है तो उस चौराहे से आगेवाले चौराहे तक वही सड़क 'वावू दमड़ीप्रसाद मार्ग' है। जिस सड़क का नाम क्लाइव रोड था वह एक दिन 'नेताजी सुभापचन्द्र वोस मार्ग' हो गयी जैसे कि लार्ड क्लाइव और सुभाषचन्द्र वोस के रास्तों में कोई फर्क ही न रहा हो।···

पर सड़कों के नाम वदलने और एक ही सड़क के कई-कई नाम रखने से भी समस्या खत्म नहीं हुई। वहुत-से वड़े लोगों के नाम वच रहे। तो, वाकी नामों को खपाने के लिए, स्कूल और कॉलेज खोले गये। जिसे हम 'शिक्षा विकास योजना' समझते और समझाते हैं, वह वास्तव में 'नाम-खपत योजना' थी और यही कारण है कि इन स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाने के लिए वह लोग रक्खे गये जिन्हें समाज और सरकार ने किसी और काम के लिए स्वीकार नहीं किया।

लाला अशरफीलालजी के वड़े और छोटे दोनों वेटों को समझाया गया कि वह भी मौके का फ़ायदा उठाकर लाला अशरफीलाल मिमोरियल नेशनल डिग्री कॉलेज खोलकर अपने साले को उसका प्रिंसिपल वना दें। यह भी अच्छा था कि दोनों भाइयों की वीवियाँ अलग-अलग थीं, पर दोनों भाइयों के वीच में साला एक ही था। तो दोनों वीवियों और एकलौते साले ने भी वड़ा ज़ोर मारा कि डिगरी कॉलेज खुल ही जाये। दोनों भाइयों को शिक्षा के फायदे वताये गये। पर वह डटे रहे कि उन्हें तो एक सड़क चाहिए। और पूरे भारतवर्ष में कोई सड़क वची ही नहीं थी···वड़ी मुश्किल से एक कच्ची सड़क का पता चला जो केवल तीन फलाँग लम्वी है और एक वेनाम खाड़ी तक जाकर खत्म हो जाती है। इस सड़क का पता चलने के वाद लोगों की जान में जान आयी और यह तय किया गया कि लालाजी को इसी कच्ची सड़क पर टरखा दिया जाये। पर लालाजी के वेटे राजी न हुए, इसलिए सड़क पक्की वनवायी गयी और उत्तरप्रदेश के एक उपमन्त्री उस सड़क का नाम रखने के लिए पधारे। यह वताने की

जरूरत नहीं कि यह उपमन्त्री छोटे और बड़े लाला के वही एकलौते साले थे जिन्हें रोजगार से लगाने के लिए डिगरी कॉलिज की योजना बनवायी गयी थी। राजनीति में वह बहुत सफल रहे। और यदि एक कार-एक्सिडेंट में उनका देहान्त न हो गया होता तो शायद वह उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री हो गये होते···अपोजीशन के एक साप्ताहिक ने एक सम्पादकीय टिप्पणी लगायी कि उत्तरप्रदेश यमराज का यह एहसान कभी नहीं भूलेगा।

यदि लाला अशरफीलाल बड़े आदमी न रहे होते और जो वह बड़े आदमी रहे होते और यदि उनके दोनों बेटे एम. पी. और एम. एल. ए. न रहे होते और जो दोनों बेटे एम. पी. और एम. एल. ए. भी रहे होते और यदि दोनों बेटों का एकलौता साला उत्तरप्रदेश में उपमन्त्री न लगा होता और उस साले का साला बम्बई में बड़े पैमाने पर सोशल वर्क न कर रहा होता तो उस सड़क का नाम 'लाला अशरफीलाल मार्ग' न पड़ा होता। और यदि उस सड़क का नाम 'अशरफीलाल मार्ग' न पड़ा होता तो हाउसिंग कोआपरेटिव सोसाइटियाँ उस सड़क के किनारे बिल्डिगें न बाँधतीं और यदि बिल्डिगें न बँधतीं तो अली अमजद गयी रात के सन्नाटे की दलदल में धँसा हुआ खजूरों के झुण्ड में अटके हुए चाँद को न न देख रहा होता।

साबित यह हुआ कि समय 'यदियों' का एक सिलसिला है और हर गरदन में कई-कई 'यदियों' का फन्दा पड़ा हुआ है। यदि जीवन में इस 'यदि' का दुम-छल्ला न लगा होता तो कितना अच्छा होता!···परन्तु 'यदि-वाद' और 'आदर्श-वाद' से बचने की कोई सूरत नहीं है।

दूसरे तमाम लोगों, मेरा मतलब है, तमाम शरीफ लोगों की तरह अली अमजद 'यदि-वादी' भी था और 'आदर्श-वादी' भी। डरता तो 'यदि-वादी' हो जाता और इस डर पर झल्लाता तो 'आदर्श-वादी'। और इसी डर और झल्लाहट के बीच में उसकी सारी जिन्दगी थी।

अली अमजद एक मध्यमवर्गी था। वह तमाम मध्यमवर्गियों की तरह असन्तुष्ट भी था। वह ऐसा वीर भी नहीं था कि 'महावीर चक्र' पाये और ऐसा कायर भी नहीं था कि लड़ ही न सके। बनारस का रहनेवाला था। गोविन्दपुरा कलाँ की एक अँधेरी गली में उसके दादा ने एक तं

सीन :

थरीला घर बनवाया था। बनारस के इन पथरीले छोटे और ऊँचे घरों में
ोचे एक छोटी-सी सहंची होती है और मंजिलों पर सहंची की जगह लोहे,
ो छड़ियों से पाट दी जाती है कि दोपहर की धूप झांककर सहंत्री को
ख सके। धूप और खुली हवा न मिलने के कारण व्यक्तित्व पनप नहीं
ाता, इसीलिए बनारस नेताओं में सम्पूर्णानन्द और हकीमों में हकीम
ाजिम और शायरों में नजीर बनारसी से बड़ा कोई आदमी पैदा न कर
का। और यह शहर, इसी लिए केवल अपने मन्दिरों, घाटों, तवायफ़ों
चौरी गली, कण्ठे महाराज, बिसमिल्लाह खाँ, सितारा देवी, छुट्टे साँड़ों
ि लिए मशहूर होकर रह गया।

बनारस !

पता नहीं आज बनारस कहाँ और कैसा है !

अली अमजद खिड़की से हट आया। चाँद से भला आँखें लड़ाने में
ौन जीत सकता है ! अतीत, वर्तमान, भविष्य, सबकी आँखें झपक जाती
ैं पर चाँद की टकटकी नहीं टूटती। चाँद के मुकाबले में अली अमजद की
ो बिसात ही क्या थी ! उसकी आँखें तो यूँही झपकी हुई थीं। वह
ो अपने-आपसे आँख मिलाने में भी लगभग हार चुका था।

उसने फिर चाँद की तरफ़ देखा। चाँद जहाँ-का-तहाँ था। कमरे के
बाहर चाँदनी रात जाग रही थी और कमरे के अन्दर एक बेनाम, डरावना
अन्धकार। मेज पर खुला हुआ क़लम जाग रहा था।

रोशनाई के लिए अपने को बेचा किये हम।
ताकि सिर्फ़ इसलिए कुछ लिखने से बाक़ी न रहे,
कि क़लम खुश्क थे,
और लिखने से माज़ूर थे हम।
माज़ूर।
मजबूर।
बेबस।

औरदीवारपर कैलेण्डरजाग रहा था। पांच जनवरी। सन् छिहत्तर।
इतवार। पांच जनवरी। बाप रे बाप, कैसी ठण्ड पड़ रही होगी उधर !
हवा जाड़े से बचने के लिए लिहाफ़ों में घुसी जा रही होगी। जाड़ा अब

सिर्फ एक याद है। बहुत गर्म याद। जैसे अभी फ्लैट की घण्टी बजेगी और दरवाज़ा खुलते ही जाड़ा दौड़कर उसे लिपटा लेगा···अली अमजद ने हाथ बढ़ाकर कैलेण्डर पर तारीख बदल दी। पाँच जनवरी की जगह छः जनवरी हो गयी। दिन इतवार की जगह सोमवार हो गया। अरे बाप रे बाप ! ग़ज़ब हो गया ! आज तो शूटिंग है। नौ बजे की शिफ्ट है। सीन तैयार नहीं है और कलाई पर बँधी हुई घड़ी एक चुहिया की तरह समय को कतरती चली जा रही है। दो बजकर सत्ताइस मिनट, [पच्चीस,... छब्बीस सैकेंड हो गया।...और मेज़ पर खुली हुई फाइल जाग रही थी।

सीन : ७५ : दिन : डाकखाना

कागज पर यह सुर्खी उसने शाम के साढ़े आठ बजे डाली थी। डाइरेक्टर हरीश राय ने चौथी बार ज़रा झल्लाके कहा था : "कमाल है अमजद ! इतना सिम्पिल सीन तुम्हारी समझ मे नही आ रहा है।"

सीन वाकई साधारण था। मुंशी सडक बैठे एक खत लिख रहे हैं और एक बुढ़िया खत लिखवा रही है। बुढ़िया का रोल लीला मिश्रा कर रही हैं और मुंशी सडक का रोल संजीव कुमार कर रहे हैं।

परन्तु 'सीन : ७५: दिन : डाकखाना' वाकई उसकी समझ मे नही आ रहा था। और हरीश राय का यह पूछना भी ग़लत नहीं था कि यह सीन उसकी समझ में क्यों नहीं आ रहा है, क्योंकि कमर्शियल हिन्दी सेनिमा मे वह सीन होते कहाँ हैं जो समझ में न आयें ?

प्रेमचन्द !

यशपाल !

अली अब्बास हुसैनी !

राजेन्द्र सिंह बेदी !

कृष्णचन्द्र !

इसमत चुगताई...

और कमरे के अन्दर यह सारे नाम जाग रहे थे।

फिल्म का नाम था 'चौराहे का दादा'। और अब तो उसे बिना सोचे लिखने की प्रैक्टिस हो गयी थी। सीन लिखना बायें हाथ का खेल हो गया

था। पहले सोचके लिखा करता था तो डाइरेक्टर, हीरो, हीरोइन, धाक कैरेक्टर आर्टिस्ट सभी उन सीनों में कीड़े निकालने बैठ जाया करते थे क्योंकि फिल्मी दुनिया में लेखक के सिवा सभी लोग लेखक होते हैं। चाहे सही हिन्दी बोल न सकें, पर लेखक होते हैं। दिलीप कुमार से लेकर राजकुमार तक, सबको लिखने का बड़ा शौक़ है। राजकुमार, राजेश खन्ना, धर्मेन्द्र, दिलीप कुमार…सभी के घरों में अच्छी किताबें हैं। कई लोगों का घर ही इस किताब-सप्लाई पर चल रहा है। पर यह बिचारे स्टार तीन-तीन शिफ़्टें करनेवाले, पढ़ने के लिए वक़्त कहाँ से निकालें! पर लिखने में क्या वक़्त लगता है? लेखक ही का क़लम लिया और सीन 'ठीक' कर दिया।…

पहले तो अली अमजद को सीनों की 'ठीक कराई' बहुत बुरी लगा करती थी। वह लड़ जाता था। बेरोज़गार रहा करता था। एक गेस्ट हाउस में पड़ा हुआ था।

'डिक्रूज़ गेस्ट हाउस।'

बान्द्रा तालाब के नुक्कड़ पर।

चार आदमी...सपनों के चार सौदागर मिलकर रहा करते थे एक कमरे में एक। पलंग था। कबाड़िये की दूकान से खरीदा हुआ एक सोफ़ा था जिसका कपड़ा फट चुका था। पाँच पतलूनें थीं। छः क़मीजें थीं। बेशुमार खटमल थे और चार आदमी थे!

अली अमजद!

हरीश राय!

बी. डी. (नाम बीरेन्द्र कुमार था। एक मरतबा किसी को हो जायें तो छूटते नहीं थे, इसलिए बी. डी. कहे जाने लगे)!

अलीमुल्लाह खाँ!

अली अमजद लेखक बनने आया था। फिल्म माध्यम का कैसा पब्लिक बलात्कार हो रहा है। हिन्दुस्तान एक जाहिल मुल्क है। जाहिलों के लिए फिल्म से ज़्यादा पॉवरफ़ुल कोई माध्यम हो ही नहीं सकता। कृष्णचन्द्र, बेदी, इसमत आपा ने तो लेखकों की नाक कटवा दी। लानत है शैलेन्द्र मजरूह और साहिर पर...लाल लाल गाल...वाह! क्या शायरी है!...

यह लोग बिक गये हैं काले रुपये के हाथ। अपना व्यक्तित्व और अपना आदर्श खो दिया है इन लोगों ने।...मैं ऐसा नहीं करूँगा।...मैं, मैं और मैं...

डिक्रूज़ गेस्ट हाउस के मच्छरीले और खटमलिये कमरे में आठ महीने या शायद आठ बरस या शायद आठ सदियाँ गुज़ारने के बाद भी अपने सपनों को सूली पर चढ़ा रहा अली अमजद नकवी, एम. ए., एल.-एल. बी.।

आपस में तय यह था कि जो पहले आयेगा वह मसहरी पर सोयेगा। इस मसहरी का भी एक किस्सा था। यह 'अदले-जहाँगीर' नामी एक फ़िल्म में जहाँगीर के सोने के लिए बनायी गयी थी। जिस दिन सेट पर आयी, उसी दिन जहाँगीर की टाँग टूट गयी। तीन महीनों के लिए शूटिंग रुक गयी। जहाँगीर की टाँग ठीक हुई तो नूरजहाँ ने शादी कर ली और हनीमून के लिए यूरोप चली गयी! दो महीनों के लिए शूटिंग बन्द हो गयी। फिर डेटें मिली तो नूरजहाँ की तलाक हो गयी और वह गम गलत करने के लिए कश्मीर चली गयी एक उभरते हुए सितारे के साथ और वहाँ उन्होंने शराब के नशे में कह दिया कि जहाँगीर बनने के लायक तो यह है, वह पाँच फीट पाँच इंच का आदमी क्या खाके जहाँगीर बनेगा! तो जहाँगीर ने कहा कि हीरोइन बदलो। दो-तीन महीने और गये। हीरोइन बदली गयी। फिर सेट लगा। ठीक शूटिंग के दिन हीरो के घर में बेटी पैदा हो गयी। हीरो का मूड खराब हो गया। पैक-अप हो गया। अब प्रोड्यूसर को फ़िक्र हुई कि किस्सा क्या है। वर्ली की वर्मावाली के यहाँ कारें दौड़ीं। पता चला कि सारा कसूर पलंग का है।...हरीश राय उस यूनिट में फोर्थ असिस्टेंट लगा हुआ था। तो वह शाही पलंग उसने माँग लिया।

इसलिए ईमानदारी की बात तो यह है कि वह मसहरी हरीश राय की थी। पर चारों के चारों लेफ्टिस्ट थे। सोशलिज्म, चेग्वारा, कानू सान्याल...गयी रात तक यह चारों इन्हीं लोगों के साथ रहा करते थे और चारमीनार पिया करते थे। तो उस शाही पलंग पर एक आदमी का अधिकार कैसे मानते? यदि वह चार पतलूनों को सोलह पतलूनें मानकर जी सकते थे तो एक मसहरी एक ही मसहरी कैसे रह सकती थी?

जो पहले आयेगा वह मसहरी पायेगा।

अली अमजद भी उन दिनों काम से लगा हुआ था। फन्दाजी के लिए कहानियाँ लिख रहा था। फन्दाजी बड़े सेक्युलर थे परन्तु मुसलमानों का छुआ नहीं खाते थे, तो हरीश ने अली अमजद को गौरीशंकर लाल 'क्रान्तिकारी' कहकर लगवा दिया था वहाँ और वह वहाँ कहानियाँ लिखने के सिवा उनकी बेटी पुष्पलता की कविताएँ ठीक करने और फन्दा पटयालवी से मुसलमानों की हरमज़दगी का आँखों देखा हाल सुनने का काम किया करता था। हालाँकि जब पिशावर, रावलपिण्डी और लाहौर में दंगे हो रहे थे तो फन्दाजी बरेली में दवाएँ बेचा करते थे! बरसों बाद जब उन्हें पता चला कि गौरीशंकर लाल 'क्रान्तिकारी' वास्तव में अली अमजद है तो फिर उन्होंने अली अमजद से बात नहीं की और हरीश राय की तो वह सूरत देखने को तैयार नहीं थे। उन दिनों उनकी तूती बोल रही थी इसलिए बिचारा हरीश राय कई जगहों से निकाला गया...और अब इस एक कमबख्त 'सीन : ७५ : दिन : डाकखाना' की वजह से दोस्त तक को झल्लाना पड़ा। 'चौराहे का दादा' हरीश की पहली बड़ी फिल्म थी। इसलिए उसे झल्लाने का पूरा हक़ था।

वह क़लम को तलवार की तरह सँभालकर बैठ गया। इस 'सीन : ७५' की तो ऐसी-तैसी...उसने लिखना शुरू कर दिया :

"सीन मुंशी सड़क की छतरी से शुरू होता है। मुंशीजी एक पाँव मोड़े और दूसरे पाँव के उठे हुए घुटने पर तख्ती रक्खे खत लिख रहे हैं। मियानी के पास पाजामे की सीवन कुछ दूर तक खुल गयी है।"

वह रुक गया। 'मियानी' से 'खुल गयी है' तक पर उन्होंने क़लम फेर दिया। एक तो सेन्सर बोर्ड में बैठनेवाली औरतें मुंशी की मियानी नहीं फटने देंगी और फाइनेन्सर और उसके खानदानवाले इस पर खफ़ा होंगे कि मियानी की सीवन खुलवाने के लिए मुंशी सड़क ही रह गया! हीरोइन को साढ़े चार लाख दिये हैं, उसकी सीवन खुले तो साली पब्लिक का कुछ भला भी हो! बाद में सेन्सर काट दे तो बाँदा नहीं।...

न जाने क्यों उसे माई के अड्डेवाली मिसेज़ डिसूज़ा याद आ गयीं! कड़की के दिनों में बी. डी. ने उस अड्डे का पता चलाया था। मिस्टर

डिसूज़ा एक्साइज में जूनियर इन्स्पेक्टर थे और माई का अड्डा उन्हीं के एलाके में था। हफ्ता बँधा हुआ था।

कहते हैं कि 'माई' बड़े ग़ज़ब की औरत हुआ करती थी। कहने को औरत थी पर मर्दों को गलियाँ याद करवाती थी। डोंडा के बड़े-बड़े दादा उसे सलाम करते थे और उसे 'माई' कहते थे। तो नौबत यहाँ तक आयी कि पुलिसवाले भी उसे 'माई' कहने लगे। खुद विजीटेरियन थी, पर मछली ऐसी तलती थी कि पूछिए मत! उसके यहाँ शराब भी दूसरे अड्डों से अच्छी बनती थी और माई का अड्डा फिल्मवालों में बड़ा पापुलर था। राजकपूर से लेकर साहिर लुधियानवी तक सभी उधार पी चुके हैं। वह फिल्मवालों के सिवा किसी को उधार देती भी नहीं थी। फिल्मवालों से उसका रिश्ता ही कुछ और था। उसका एकलौता बेटा श्यामलाल बनारसी फिल्मों में एक्सट्रा था। बड़ा सजीला जवान। हीरोइनें मरती थीं। पर वह किसी की तरफ आँख उठाके नहीं देखता था। मजे में दिन-भर फिल्मों में काम करता और गयी रात तक अड्डे पर। फिर उसे जाने क्या सूझी कि एक्सट्रा लोगों की यूनियन बनाने के चक्कर में पड़ गया। कहता था, "सप्लायर लोग सब खा जाता है। एक्सट्रा बहन लोग का इज्जत अलग खराब करता है। ऊनियन बनेगा। इन्किलाब जिन्दाबाद।" एक दिन वह 'फेमस महालक्ष्मी' में मीटिंग करके आता रहा कि कोई पीछे से उसकी पीठ में छूरा घोप दिहिस! ...तो फिल्मवाले बेटे तो हो ही गये ना! अड्डे पर उधार पीनेवालों में से जो भी मशहूर हो जाता, वह अड्डे पर उसका फोटो टाँग देती और उसके बारे में यूँ बात करती जैसे वह किसी और माँ का बेटा न हो, बल्कि उसका अपना श्यामलाल बनारसी हो। ···उसे किसी ने रोते नहीं देखा था। पर श्यामलाल की मौत के बाद वह एकदम से बूढ़ी हो गयी। उन्हीं दिनों मिस्टर डिसूज़ा रिटायर हुए तो उन्होंने 'माई का अड्डा' खरीद लिया। पर 'माई' मालिक न रह जाने के बाद भी मालिक ही रही। मिस्टर डिसूज़ा ज़रा टिर-पिर करते तो वह उनकी ऐसी खबर लेती कि उनके छक्के छूट जाते।

अड्डे का नाम भी 'माई का अड्डा' ही रहा। फिल्मवाले फक्कड़ी के दिनों में उसी तरह आते रहे और उधार पीते रहे!

फिर एक रात ऐसा हुआ कि माई चुपचाप मर गयी। यह खबर जंगल की आग की तरह सारी फिल्म इण्डस्ट्री में फैल गयी कि माई मर गयी। सवेरा होते गाड़ियाँ आने लगीं। जूनियर आर्टिस्ट असोसियेशन, ऐक्टर्ज़ गिल्ड, असिस्टेंट डाइरेक्टर्ज़ एसोसियेशन, वग़ैरा-वग़ैरा की तरफ से अर्थी पर फूल-मालाएँ चढ़ायी गयीं! डेविड अब्राहम और मनमोहन कृष्ण और महेन्द्रनाथ ने कन्धा दिया···कहते हैं कि डाँडा से तब तक कोई ऐसा शानदार जनाज़ा नहीं उठा था। 'ब्लिट्ज़' में जनाज़े का फ़ोटो भी छपा!

माई मर गयी। माई का अड्डा जिन्दा रहा। वहाँ के लोगों को 'माई' की आदत पड़ गयी थी तो धीरे-धीरे मिसेज़ डिसूज़ा माई कही जाने लगीं। वी. डी. मिसेज़ डिसूज़ा या 'माई द सेकेंड' का चहीता बन गया था। उसने उन्हें यह झाँसा दे रक्खा था कि वह रोज़ी डिसूज़ा से शादी करना चाहता है। इसीलिए माई के अड्डे पर उसकी बड़ी मान-जान थी। डिसूज़ा साहब वी. डी. को पसन्द नहीं करते थे; पर बिचारे कर भी क्या सकते थे!

वी. डी. पैदायशी बेरोजगार था। वह अब तक तीन फिल्मों में काम कर चुका था। तीनों रोल बोलनेवाले थे। एक फिल्म में वह विलेन का बॉडी-गार्ड बना था। उसमें संवाद तो उसे बहुत मिलते। पर लेखक साला उससे जलता था। तो उसने उस पात्र को गूँगा बना दिया। दूसरी फिल्म में वह चौकीदार था। उसके सामने ही एक मर्डर हुआ। वह जोर से चिल्लाया: 'खून।' और किसी ने उसे गोली मार दी। उसके ख़याल में यही चौकीदार फिल्म का नायक था क्योंकि इसी चौकीदार का दो बरस का बेटा आगे चलकर हीरो बना और बाप के क़ातिलों का पता चलाये बिना उसने दम नहीं लिया। तो एक हिसाब से फिल्म उसी पर आधारित थी। तीसरी फिल्म में वह डाक्टर-हीरो का कम्पाउण्डर था। डाक्टर का ज़्यादा वक़्त तो हीरोइन के साथ लव-सीन करने और गाने गाने में गुज़रता था, इसलिए मरीज़ों की देखभाल उसी को करनी पड़ती थी। उस फिल्म में उसे बहुत डाइलाग मिले। कोई पूछता, "डाक्टर साहब हैं?" और वह कहता, "नहीं हैं।" (यह बात उसने पाँच बार कही।)···इसीलिए वी. डी. अपनी गिनती कैरेक्टर आर्टिस्टों में करता था। 'माई द सेकेंड' को फिल्में देखने का बड़ा शौक़ था। और रोज़ी को वह हीरोइन बनाना चाहती थीं। वी. डी. के

लिए यही बहुत था। वह रोज़ी का पी. आर. ओ. हो गया। उसे हिन्दी-उर्दू भी पढ़ाने लगा। माई ने उसकी शराब मुफ्त कर दी थी।

"यह क्या बेहूदगी फैला रक्खी है तुमने !" एक रात अली अमजद ने उसे डाँटा। वह रात बी. डी. की मसहरीवाली रात थी।

"ख्वाहम-ख्वाह बिचारी को सब्ज़बाग दिखला रहे हो।"

"वह देखती क्यों है ?" बी. डी. ने बहुत ही साधारण-सा सवाल करके सबको चुप कर दिया, "मैं पूछता हूँ बेरोज़गारों के इस देश, भारत दैट इज़ इंडिया, में किसी लड़की की माँ को क्या हक है कि वह अपनी बेटी का नाम रोज़ी रखे ?"

बी. डी. अजीब आदमी था। हर वक्त सीरियस रहा करता था, जैसे क्रान्ति खास उसी के पते पर आयेगी; जैसे हिन्दुस्तान में उसके सिवा किसी और को क्रान्ति का इन्तिज़ार ही नहीं था।

कभी-कभी तो अलीमुल्लाह उस पर बिगड़ जाता, "छोड़ो यार! क्रान्ति आती भी हुई हो तो तुम्हारी सीरियसनेस देखकर डर जायेगी।"

इसीलिए तो जब यह बी. डी. रोज़ी डिसूज़ा से खिलवाड़ करने लगा तो सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। बी. डी. और धोखाधड़ी ? सवाल ही पैदा नहीं होता जी ! पर बी. डी. यही कहता रहा कि उसे रोज़ी का नाम पसन्द है। वह घण्टों रोज़ी को दिन-भर की रूदाद बताता। बी. आर. चोपड़ा ने आज रोज़ी को अपनी 'नेक्स्ट' फिल्म में 'ब्रेक' देने का पक्का वादा किया है। नासिर हुसैन तो बोले कि अभी लाव, नेक्स्ट फिल्म के लिए साइन कर लेता हूँ। पर वह तो बिल्कुल ही 'इसकेपिस्ट' फिल्में बनाता है। मैं तुम्हें वहाँ काम नहीं करने दूँगा···

अली अमजद और हरीश तो झेल जाते। पर अलीमुल्लाह पोलिटिकल साइन्स में एम. ए. था। गांधी को बूर्ज़्वाज़ी का एजेंट और नेहरू को ब्रिटिश स्पाई कहा करता था। वह झल्ला जाता। कहता, "बी. डी., तुम्हारा मार्क्सवाद फ्राड है। तुम साला उसको इमसाक की गोली बनाकर खाता है ..."

बी. डी. मुस्कुराता और कहता, "रोज़ी बड़ी टैलेंटेड ल[illegible] टैलेंट को आशा की ओस चटाते रहना चाहिए···"

"हाँ तो उसे आशा पारेख का सेक्रेट्री बनवा दो। साला, मुफ़्त की शराब के लिए यह सब चक्कर चलाये हुए है।..."

वी. डी. और अलीमुल्लाह में एक मिनट नहीं पटती थी। और अलीमुल्लाह ही कामवाला था। बाक़ी तीनों दोस्तों को महीने के आखिर में फ़ाइनेन्स भी किया करता था। तीनों दोस्तों के महीने का आखिर अलग-अलग शुरू हुआ करता था। हरीश को महीने की १५ को तनख्वाह मिलती थी! तो उसके महीने का आखिर पहली-दूसरी से लगता था। कभी-कभी उसके महीने का आखिर कई महीनों तक फैल जाता था क्योंकि छोटी और मँझली फिल्म कम्पनियों में तनख्वाह का कोई भरोसा नहीं है। वी. डी. के महीने का आखिर लगभग साल-भर चलता था। अली अमजद के महीने का आखिर आम तौर से महीने के आखिर ही में होता था। बस, एक अलीमुल्लाह था जो साढ़े आठ सौ तन्ख्वाह पाता था। सौ-पचास ऊपर से कमा लेता था। और ज़्यादातर वी. डी. का बोझ उसी को उठाना पड़ता था। दोनों साथ के पढ़े हुए भी थे। रसड़ा, ज़िला बलिया के रहनेवाले थे। साथ-ही-साथ बम्बई आये थे। एक-दूसरे को बहुत चाहते थे और एक-दूसरे से दिन-रात लड़ा करते थे।

हरीश और अली अमजद को अलीमुल्लाह से वी. डी. ही ने मिलाया था। अली अमजद और हरीश एक रात, 'भाई के अड्डे' पर अपनी फिल्म का प्रोपोज़ल बना रहे थे। वी. डी. पास ही बैठा दारू पी रहा था। पता नहीं कब और कैसे और क्यों वह उनके साथ आ बैठा और प्रोपोज़ल में ३३$\frac{1}{3}$% का साझेदार बन गया।

उस रात अली अमजद और हरीश दोनों ही बे-घर थे। और इसी बेदर्द सच्चाई से पिण्ड छुड़ाने के लिए फिल्म के प्रोपोज़ल पर बहस कर रहे थे। राजेन्द्रकुमार को लेने या न लेने से साढ़े सात लाख का फ़र्क़ पड़ रहा था। ओवर-फ्लो अलग। अली अमजद कह रहा था कि राजेन्द्रकुमार ही को लेना चाहिए। हरीश कह रहा था कि राजेन्द्रकुमार घामड़ है। उसे ऐक्टिंग करना आता ही नहीं...धीरे-धीरे दोनों की आवाज़ें ऊँची होने लगीं। हरीश डाइरेक्टर था। अली अमजद लेखक...

वी. डी. ने कहा, "एक नया छोकरा आया है। राजेश खन्ना। सस्ता

मिल जायेगा'''चलिए, घर चलकर आराम से बातें करते हैं।"

कट।

डिकूज गेस्ट हाउस। कमरा नम्बर सात।

"यह अलीमुल्ला खाँ हैं।" बी. डी. ने कहा, "मेरे ही साथ रहते हैं। और—अरे! आप लोगों का नाम तो पूछा ही नहीं। खैर, क्या फ़र्क़ पड़ता है! यह बड़े मशहूर डाइरेक्टर हैं और यह प्रसिद्ध लेखक। आज से हमारे ही साथ रहेंगे'''"

कट।

अली अमजद ने माई के अड्डे, उसकी मिसेज डिमूजा और डिकूज गेस्ट हाउस की यादों से मुआफी माँग ली, क्योंकि चाँद खजूरों के झुण्ड से निकलकर न जाने कहाँ जा चुका था। कमरे के बाहर रात की आँख लग चुकी थी। कमरे के अन्दर वह जाग रहा था।

उसने फिर कलम उठा लिया। पिछले लिखे को पढ़ा।

सीन : ७५ दिन . डाकखाना

सीन मुंशी सड़क की छप्री से शुरू होता है। मुंशीजी एक पाँव मोड़े, और दूसरे पाँव के उठे हुए घुटने पर तख्ती रक्खे खत लिख रहे हैं।'''

उसने लिखना शुरू किया।

अबुलखैर की अम्माँ सामने बैठी अपनी छोटी-सी पीतल की पन-कुटनी में पान का बीड़ा कूट रही है और खत का डिक्टेशन दे रही हैं।

अबुलखैर की माँ :

का लिक्खा बेटा?

मुंशीजी : (पढ़ते हैं)

अबुलखैर के अब्बा को बाद सलामालैकुम के मालूम हो कि हम ई खत नये मुंशीजी से लिखवा रहे हैं। पुरानेवाले मुलुक चले गये। इस वास्ते थोड़े लिक्खे को बहुत जानो।

(वह अबुलख़ैर की माँ की तरफ़ देखता है।)

अबुलख़ैर की माँ :

हाँ लिक्खो। थोड़े लिक्खे को बहुत जानो और खत को तार समझो।...

"गेट आउट!" भोलानाथ खटक की आवाज़ आयी।
अली अमजद ने सामनेवाली दीवार को माँ-बहन की कई गालियाँ दीं
उसी दीवार के पार खटकजी और श्रीमती रमा चोपड़ा का सीन शुरू
चुका था। बिल्डिंग के दूसरे लोग तो भोलानाथ और रमा के झगड़ों के
ादी हो चुके थे। पर अली अमजद नया-नया आया था, इसलिए यह झगड़े
ुनकर वह घबरा जाया करता था।

फ्लैट की चाबी देते वक़्त मनचन्दानी ने होशियार कर दिया था। पर
वह इतना भी नहीं समझता था। यहाँ से अच्छा तो डिक्रूज़ गेस्ट हाउस ही
था। वहाँ सड़क का शोर था। खटमल थे। मिसेज़ डिक्रूज़ थीं...पर एक
भोलानाथ चोपड़ा उन सब पर भारी थे।

उनका नाम भोलानाथ चोपड़ा था, पर 'सुरसिंगार' वाले उन्हें भोला-
नाथ खटक या खटकजी कहा करते थे क्योंकि बिल्डिंग में सबसे उनकी
खटकी रहा करती थी।

भोलानाथ खटक दिल से तो यह चाहते थे कि 'सुरसिंगार हाउसिंग
सोसायटी लिमिटेड' में उनके सिवा कोई न रहे। वह अपनी बीबी और
बच्चों को भी मुश्किल ही से अपनों में गिनते थे। इसलिए किसी ऐसे का
उस बिल्डिंग में रहना उन्हें एक आँख नहीं भाता था जो उनकी बीबी-
बच्चों में न हो। पर बिचारे थे मध्यमवर्गी। पूरी सोसायटी में अकेले रह
नहीं सकते थे। सोसायटी में कुल मिलाकर, चौबीस फ्लैट थे और चौबीस
परिवारों के लिए थे और चौबीस ही परिवार रहते भी थे। और चौबीस
परिवारों के नौकर-चाकर भी रहते थे।

इस भीड़-भाड़ को भी खटकजी किसी-न-किसी तरह झेल भी जाते,
परन्तु परेशानी की बात यह थी कि तमाम नौकर-चाकर अपने-अपने
मालिकों ही को मालिक मानते थे जब कि खटकजी यह चाहते थे कि

बिल्डिंग के सारे नौकर उनको अपना मालिक मानें। बिल्डिंग के नौकरों को यह बात मंजूर नहीं थी।

परन्तु असली कयामत तो तब आयी जब ठीक उनके बगलवाले फ्लैट में अली अमजद आ गया। उसके परिवार में बाल-बच्चे थे ही नहीं। नौकर कई थे।

अली अमजद के आने की खबर सुनकर वह बहुत भुनभुनाये कि भुनभुनाने का उन्हें बड़ा शौक था। 'सुरसिंगार' वालों ने पहले उनका नाम भुनभुन चोपड़ा ही रक्खा था। बाद में मिसेज गुप्त ने उन्हें खटकजी का खिताब दिया जो सर्वसम्मति से मान लिया गया।

रमा चोपड़ा यानी श्रीमती खटक का कहना यह था कि 'सुरसिंगार' आने के बाद ही नाथ को न जाने क्या हो गया है। पहले वह ऐसे नहीं थे। तो फिल्म के प्रसिद्ध लेखक और 'सुरसिंगार' नम्बर बारह के निवासी श्री रामनाथ ने छान-बीन की और पता चलाया कि·

'सुरसिंगार' आने से पहले वह 'सी' ग्रेड क्लर्कों की एक कालोनी में रहा करते थे। *वह एलेक्ट्रानिक्स की एक कम्पनी में बिल-कलेक्टर थे।* एक सौ बानवे रुपये पगार पाते थे। भत्ता ऊपर से। रमा ने क्लर्कों की उस बस्ती को एक हजार बानवे पगार बता रक्खी थी। भत्ते और ऊपर की आमदनी अलग। नयी-नयी शादी हुई थी। नयी नयी साड़ियां थीं। नये-नये गहने थे। कुछ पैसे भी थे। तो बात बनी हुई थी। पैसों को रमा ने बड़ी उस्तादी से सूद पर चलाना शुरू कर दिया। एक का डेढ़। क्लर्कों की बीवियों को पैसे की जरूरत तो हमेशा ही रहती है। इसलिए कालोनी में रमा की बड़ी इज्जत हो गयी थी। खटकजी का भी बड़ा रौब था कि क्लर्क सिर झुकाकर जीने का आदी होता है। फाइलों के लिए जगह बनाने के लिए वह अपनी आत्मा को सरकाता रहता है, यहाँ तक कि आत्मा मेज से नीचे गिर जाती है और उसे पता भी नहीं चलता। और झाड़ू देनेवाला, दूसरे दिन, उसे कल के कूड़े के साथ फेंक आता है। पर बिना आत्मा का यह आदमी झल्लाया हुआ होता है और दूसरों की आत्मा की टोह में लगा रहता है। उस कालोनी का भी यही हाल था। सब खटकजी की इज्जत भी करते थे और उनकी टोह में भी लगे रहते थे। और कालोनी का यह

टीन का भगवान, वेखवर, कालोनी की छत पर अपने कद के ५ फीट ११ इंच का झण्डा फहराता रहता था।

कि एक दिन ऐसा हुआ कि उस कालोनी के एक क्लर्क ने लंच के वक्त अपने-आपको खटकजी के आफ़िस के आस-पास पाया। श्री वाबूलाल श्रीवास्तव को लंच का भत्ता आफ़िस से मिलता, पर उन्होंने सोचा कि वह भत्ता वचा क्यों न लिया जाये। और यह उन्होंने इसलिए सोचा कि एक हज़ार वानवे पगारवाले पड़ोसी का आफ़िस पास ही था। तो वह भोलानाथ के आफ़िस की तरफ़ चल पड़े। परन्तु जव उन्होंने, वहुत अकड़कर, एक चपरासी से डिप्टी सेल्ज सुपरवाइजर मिस्टर भोलानाथ चोपड़ा के वारे में पूछा तो चपरासी ने यह कहकर मक्खी-सी उड़ा दी कि वहाँ उस नाम का कोई डिप्टी सेल्ज सुपरवाइजर नहीं है। हाँ, एक असिस्टेंट विल कलेक्टर ज़रूर है। क्लर्क श्री वावूलाल श्रीवास्तव समझे कि चपरासी मज़ाक कर रहा है। तो वह इससे उखड़ गये कि एक चपरासी की यह मजाल कि ग्रेड तीन के क्लर्क से मज़ाक करे! चपरासी भी विगड़ गया। वड़ी गर्मागर्मी हो गयी। वह तो ठीक उसी वक्त खटकजी आ गये नहीं तो वात शायद वहुत वढ़ गयी होती। परन्तु खटकजी ने जो श्रीवावूलाल को देखा तो उन्हें पसीना आ गया। तो, उन्होंने चपरासी को वोलने का मौका ही नहीं दिया। जल्दी से चपरासी को डाँट-डपटके वह श्रीवास्तवजी को लेकर आगे वढ़ गये।

सामने एक चिलिया का रेस्तोराँ भी था और 'क्वालिटी' भी। वैसे तो रोज़ वह चिलिया के चायखाने में दिन को उसल-पाव खा लिया करते थे, पर श्रीवास्तवजी को लेकर तो उन्हें 'क्वालिटी' ही में जाना पड़ा। एक हज़ार वानवे पगार पानेवाला (भत्ते और कमीशन अलग) भला उसल-पाव कैसे खा सकता था!

दस साल की नौकरी में खटकजी ने अव तक 'क्वालिटी' में वस एक वार चाय पी थी। एक सौ वानवे पगार पानेवाला 'क्वालिटी' जैसे रेस्तोराँ में खाना नहीं खाता, केवल वोर्ड पढ़ता है और आगे वढ़ जाता है।

"क्या खाइयेगा?" खटकजी ने जान पर खेलकर पूछा।

"तन्दूरी मुर्ग हो जाये।" श्रीवास्तवजी ने कहा कि इसके आगे वह

कुछ जानते ही नहीं थे। और फिर उन्होंने मीनू-कार्ड उठा लिया। एक मीनू-कार्ड खटकजी के हाथ मे भी था। श्रीवास्तवजी आर्डर देते जा रहे थे और खटकजी दिल-ही-दिल में, जल्दी-जल्दी हिसाब करते जा रहे थे।

दो तन्दूरी मुर्ग—१८ रुपये।

"नहीं श्री वास्तवजी। आज मंगल है ना। मंगल को मीट नहीं खाता मैं।"

"अमाँ छोड़िए। किस युग में रहते हैं आप'''" श्रीवास्तव साहब फिर शुरू हो गये।

दो शाही कोर्मे—१४ रुपये।

दो चिकन मक्खनवाला—२२ रुपये।

'''भोलानाथ खटक श्रीवास्तवजी की आवाज़ के गहरे कुएँ में डूबते चले गये और उनका दिल उनकी जेब के रेगिस्तान में भटकता रहा।''' आर्डर सुनते-सुनते उनकी भूख मर गयी।

सत्तासी रुपये सोलह पैसों का बिल आया। वह तो खैरियत यह हुई कि खटकजी बिल वसूलने के दौरे से लौटे थे, इसलिए जेब मे पैसे थे। तो उन्होंने जेब मे हाथ डालकर सौ-सौ के नोटों की गड्डी निकाली। फिर उन्होंने गड्डी से छाँट-छाँटके पुराने नोट निकाले। और उन पुराने नोटों से उन्होंने बिल अदा किया।

क्लर्क श्री बाबूलाल श्रीवास्तव ने सौ-सौ के इतने नोट एकसाथ नही देखे थे। और जब खटकजी ने वेटर के लिए पाँच रुपये चौरासी पैसों का टिप छोड़ा तो बाबूलालजी बेहोश होते-होते बचे।

तिरानवे रुपये खर्च तो हो गये, पर कालोनी पर धौंस भी बैठ गयी। रमा को यह खबर देर से मिली, क्योंकि वह श्रीमती सरला सिंहा के साथ मैटनी शो देखने आयी हुई थी। तय यह हुआ था कि खटकजी 'नेपचून टाकीज़' के सामने मिलेंगे और फिर वह लोग सिंहा साहब के यहाँ जायेंगे और वहीं खाना खायेंगे।

रमा हफ़्ते में दो-तीन बार सरला के साथ ऐसे प्रोग्राम ज़रूर बना लिया करती थी। इसमें कई फ़ायदे थे। सेनिमा मुफ़्त। रात का खाना

मुफ्त। व्हिस्की मुफ्त। व्हिस्की भी कैसी ? असली स्काच। 'डिम्पिल', 'जॉनी वाकर' या कभी-कभी 'शिवास रीगल'।

खटकजी को अच्छी व्हिस्कियों के नाम ज़बानी याद थे। चोर-बाज़ार से खाली बोतलें खरीदकर और उनमें चाय भरके उन्होंने अपने घर में पूरा बार सजा रखा था। पर अपने घर में वह पीते थे हिन्दुस्तानी व्हिस्की और वह भी महीने दो महीने में एक-आध वार। पर जब सरला से रमा की दोस्ती हो गयी तो खटकजी रमा को याद दिलाने लगे कि उसे सेनिमा देखे दो दिन हो गये हैं और रमा तुरन्त पड़ोस के पब्लिक फ़ोनबूथ से सरला को फोन करती, "लिसिन (सुनो), आज बाँद्रा टाकीज में बड़ी रोंणी फिलम लगी है।"

और सरला यूं तैयार हो जाती जैसे सेनिमा जाने को उधार खाये बैठी रही हो।

बात यह है कि सरला बिचारी की अपनी समस्याएँ थीं। मिढा साहब को दूसरों की बीवियाँ खूबसूरत दिखायी दिया करती थीं। और इसीलिए उन्हें सरला के लिए समय ही नहीं मिलता था। एक तरह से सरला को यह बात बुरी भी नहीं लगती थी। और उसे यह बात बुरी इसलिए नहीं लगती थी कि उसे मर्दों का शौक़ ही नहीं था। उसे खुद दूसरों की बीवियाँ अच्छी लगा करती थीं। और यह शौक़ उसे सोफ़िया क़ॉलेज की एक टीचर मिस डिक्रूज़ से मिला था।

मिस डिक्रूज़ साहित्य पढ़ाया करती थीं। क्लास का काम न करो तो गालों में अजब तरह से चुटकी लिया करती थीं। खुश होती तो लिपटकर अजीब तरह से प्यार कर लिया करती थीं। सीनियर लड़कियाँ उन्हें आपस में, मिस की जगह मिस्टर डिक्रूज़ कहा करती थीं। पहले तो मिसेज़ मिढा (जो उन दिनों सीधी-साधी सरला हुआ करती थीं) की समझ में यह बात नहीं आयी कि सीनियर लड़कियाँ अच्छी भली मिस डिक्रूज़ को मिस्टर डिक्रूज़ क्यों कहती हैं। कभी हिम्मत करके पूछती तो जवाब में एक अजीब-सी हँसी मिल जाती।...फिर उसने देखा कि सूखी-सड़ी-सी मिस रुक़ैया दिलगीर ख्वाह-म-ख्वाह उससे जलने लगी है। वह ठीक काम करती तब भी मिस दिलगीर, किसी-न-किसी बहाने, उसे डाँट जरूर पिला

देतीं। वह उसे सबसे ज्यादा होम वर्क भी देतीं। उसके कपड़ों पर एतराज़ करतीं।

सरला की समझ में रुक़ैया का गुस्सा न आता तो वह रुआँसी होकर मिस डिक्रूज़ से कहती और वह मुस्कुराकर उसे लिपटा लेतीं और उसके होंठों को चूम लेतीं या उसके होंठों पर धीरे से दाँत काट लेतीं या उसके मुँह में अपनी ज़बान डाल देतीं और सरला का कच्चा बदन एक अजीब-सी गुदगुदी से भर जाता।···नतीजे में मिस दिलगीर और रूठ जातीं।

तब एक दिन स्टाफ़-रूम में मिस डिक्रूज़ ने, सारी टीचरों के सामने, मिस दिलगीर को बहुत डाँटा कि वह सरला को नाहक़ परेशान करती हैं, मिस दिलगीर रोने लगीं। और मिस डिक्रूज़ एक और टीचर से हँस-हँसके बातें करने लगीं।

सरला के आने से पहले मिस डिक्रूज़ और मिस दिलगीर में बहुत गाढ़ी छना करती थी। तब दिलगीर इतनी उजडी-उजडी भी नहीं रहा करती थीं। बिल्कुल लड़की दिखायी दिया करती थीं। नमकीन साँवले रंग, बड़ी-बड़ी आँखों और छरछरे बदनवाली एक लड़की। फिर सरला आ गयी और उसी दिन मिस दिलगीर अकेली रह गयीं और उनकी आँखों का फ़्यूज़ उड़ गया।

एक रात सरला रीडिंग-रूम से आयी तो उसने क्या देखा कि मिस दिलगीर उसके बिस्तर पर गहरी नींद सो रही हैं। वह हैरान हुई। मेज़ पर एक ख़त था। सरला ने वह ख़त पढ़ा। वह ख़त उसी के नाम था :

"सरला, तुमने लिज़ को मुझसे छीनकर अच्छा नहीं किया। तुमने मेरी ज़िन्दगी छीनी है तो मैं कहीं और क्यों मरने जाऊँ? अब लिज़ जब तुम्हें अपनी बाँहों में लेगी या तुम्हारा मुँह चूमेगी या तुम्हारे ब्लाउज़ में हाथ डालेगी या···सोचने ही से मेरा दम घुट रहा है। ख़ुदा तुम्हें गारत करे सरला···जब तुम अकेले में लिज़ के प्यार का जवाब अपने कच्चे बदन के प्यार से दे रही होगी तब तुम्हें मैं दिखायी दूँगी, तुम्हारे अपने बिस्तर पर, लिज़ और तुम्हारे बीच में, मरी हुई।···"

सरला इससे ज़्यादा न पढ़ पायी। वह दिलगीर की लाश को छोड़कर भागती चली गयी, यहाँ तक कि उसने अपने-आपको मिस डिक्रूज़, सीनियर

लड़कियों की मिस्टर डिक्रूज़ और मिस दिलगीर की लिज़ के कमरे के दरवाज़े पर पाया।

लिज़ न्यु ब्लाक की वार्डन थी। न्यु ब्लाक और ओल्ड ब्लाक के बीच में इमली का वह पुराना पेड़ भी था जिसके बारे में हास्टल में कहानियाँ मशहूर थीं कि उसपर कोई जिन या भूत रहता है जो लड़कियों को परेशान करता है। पर सरला को उस रात वह पेड़ जैसे दिखायी ही नहीं दिया। वरना वह तो दिन को भी उस पेड़ के आसपास नहीं फटकती थी।

उसने दरवाज़ा पीटना शुरू किया। लिज़ ने दरवाज़ा खोला। वह सरला को देखकर घबरा गयी। सरला ने चुपचाप उसे दिलगीर का खत दे दिया···और उस रात उसे यह भी मालूम हो गया कि सीनियर लड़कियाँ लिज़ को मिस्टर डिक्रूज़ क्यों कहती हैं ?

सोफ़िया में हफ़्तों सन्नाटा रहा। लिज़ ने दिलगीर का खत उसी रात फाड़ दिया था। सब जानते थे कि दिलगीर ने आत्महत्या क्यों की और सब यह भी जानते थे कि दिलगीर ने सरला के कमरे ही में आत्म-हत्या क्यों की, पर सब चुप रहे। कोई कह भी क्या सकता था···फिर थोड़े दिनों बाद लोग मिस दिलगीर को भूल गये और सीनियर लड़कियाँ सरला को मिसेज़ डिक्रूज़ पुकारने लगीं।···

तो भला मिढा में उसे क्या दिलचस्पी हो सकती थी ! उसके साथ सोलह बरस की एक नौकरानी आयी थी और वही उसका सब काम करती थी। मिढा कुछ कह भी नहीं सकते थे क्योंकि सरला को मिसेज़ मिढा बनाने ही से उन्हें इतना पैसा मिला था कि उन्होंने अपना कारोबार शुरू किया था। तो जब उन्हें अपनी बीबी नहीं मिली तो वह दूसरों की बीवियों में दिलचस्पी लेने लगे। बस, वह इसका खयाल रखते थे कि जिस बीवी पर सरला की निगाह हो, उससे दूर रहें।

भोलानाथ बिल-कलेक्टर की बीवी रमा मिढा को अच्छी लगी थी। लगता था जैसे एम-फ़ॉम की बनी हुई है। चम्पई रंग। आँखें ऐसी कि लगता था जैसे आँखों की ज़बान समझ सकती हैं। तो उन्होंने भोलानाथ से दोस्ती करने का फ़ैसला किया।

एक दिन मिश्रा अपनी फोर्ड कन्वर्टिब्ल पर ग्रेड-फोर आफिसर्ज़ हाउसिंग कोआपरेटिव सोसायटी में भोलानाथ का फ्लैट पूछता आया। कालोनी-वालों ने ऐसी कार सिर्फ सड़कों और हिन्दी या अंग्रेज़ी फिल्मों में देखी थी। पर यह कार तो ठीक उनकी कालोनी में खड़ी थी। सब सन्नाटे में आ गये। और जब उन्हें पता चला कि इस कार मे बैठकर आनेवाला भोलानाथ से मिलने आया है तो कालोनी में भोलानाथ की इज्जत और बढ़ गयी और यूं मिश्रा आने-जाने लगा। पहले तो वह भोलानाथ के होते मे आता रहा, फिर कभी-कभार यूं—ही—गुज़र—रहा—था—सोचा—मिल—लूं के सहारे दो-एक बार आया। फिर सहगलजी के होते उसका आना बिल्कुल बन्द हो गया।

उन्ही दिनों एक दिन इत्तिफाक से एक दिन सरला और रमा की मुलाकात हो गयी। रमा मेहराबाद बाज़ार में अमरीकन जार्जेट की साड़ियाँ देख रही थी। उन दिनों वह साड़ियाँ खरीद नहीं सकती थी, सिर्फ देख सकती थी और फिर अपने खयालों मे वह फ्रेंचशिफॉन, जार्जेट, कांजीवरम, मैसूर-सिल्क और बनारसी पोथ पहनकर खुश हो लिया करती थी। उसने दूकानें बांध रक्खी थीं। किसी एक दूकान पर वह महीने में दो बार नहीं जाती थी···और दो महीने के बाद किसे यह याद रहता है कि कोई रमा चोपड़ा आयी थी जिसने सौ-सवा सौ साड़ियां देखी थीं और एक साड़ी भी नहीं खरीदी थी। रमा एक समझदारी और करती थी कि उस दूकान पर रुकती थी जिसपर भीड़-भाड़ हो। साड़ियां देखते-देखते बगल में बैठी हुई औरत को राय देने लगती कि इसका सिल्क अच्छा नहीं है। इसकी बटी में जरा खराबी है। हां, यह अच्छी है···और यह साड़ी उस दुकान पर यहां से चालीस रुपये कम दाम पर मिल सकती है। यह बात तो उसे ज़बानी याद थी कि किस दूकान पर साड़ियों का नया स्टाक आया है और किस साड़ी की क्या कीमत है। ···उसकी बातें सुनकर दूकानदार उसे दिल-ही-दिल मे गालियां देता। पर समझता कि वह उस औरत के साथ है जो साड़ियां देख रही है, इसलिए दिल मसोसकर रह जाता और उस औरत के साथ रमा को भी ठण्डी कोक का 'ग्लास' मिल जाता। फिर कोक पी-पाकर वह उसी औरत के साथ उस दूकान से टल जाती। अब चूंकि

उसकी वजह से उस औरत के तीस-चालीस रुपये बचे हैं, इसीलिए वह औरत मजबूरन उससे पूछती, "कहाँ रहती हैं आप ?" इस सवाल से रमा हमेशा घबराया करती थी। यह कहने में सुबकी होती थी कि ग्रेड-फोर आफ़िसर्ज़ हाउसिंग सोसायटी में रहती है। तो कहती, "क्या बताऊँ बहेनजी बम्बई में कहीं रहने को जगह मिलती है ? तीन फ्लैट बुक करवा रक्खे हैं। एक पेडर रोड पर, एक कफ़ परेड पर और तीसरा जूहू में। पर बन ही नहीं चुकते किसी तरह। एक सम्बन्धी के साथ टिके हुए हैं बान्द्रा ईस्ट में। बड़ी तकलीफ़ है···" बातों-बातों में वह उस औरत का नाम-पता मालूम कर लेती। फ़ोन का नम्बर लिख लेती। और यदि वह औरत किसी पैसेवाले घर की निकलती तो एक-दो बार उसे फ़ोन करती। और फिर उसके यहाँ आना-जाना शुरू कर देती तो दिन का खाना और शाम की चाय यूं निकल जाती।···पर सरला से उसकी मुलाक़ात नहीं हुई क्योंकि मिढा साहब यह चाहते नहीं थे। मिढा साहब को रमा पसन्द आयी थी। पर वह अच्छी शराब की तरह अच्छी ऐयाशी के भी क़ायल थे। उन्हें न वह शराब पसन्द आती थी जो पहले ही घूंट में हलक़ से उतरे और सर चढ़ जाये और न उन्हें वह औरत पसन्द आती थी जो पहली ही मुस्कुराहट के जवाब में पूछे कि बेड-रूम किधर है। उन्हें मंज़िल से ज़्यादा रास्तों का शौक था। और वह अभी रमा के रास्ते पर चल रहे थे। वह अभी सरसों के साग में मक्खन मिला रहे थे। इसीलिए जब उन्होंने रमा को एक दूकान में देखा तो सरला को लेकर टल जाना चाहा क्योंकि उन दिनों सरला का मूड खराब था। उसकी नौकरानी किसी आदमी के साथ भाग गयी थी और सरला बिना किसी साथी के थी। और वह ऐसे में तो सरला और रमा की मुलाकात बिल्कुल ही नहीं करवाना चाहते थे। पर उनपर रमा की निगाह पड़ गयी। वह मुस्कुराकर उनकी तरफ लपक आयी। उसे दूकान से भागने का कोई मौका नहीं मिल रहा था और दूकानदार उसे उस एक साड़ी पसन्द करवा लेने में कामयाब हो गया था। दूकानदार के सामने वह बग़लें भी नहीं झाँक सकती थी। सोच रही थी कि अपना बटवा खोले और एकदम से 'अरे' कहके दूकानदार से कहे कि 'पैसे लाना तो वह भूल ही गयी है।

चेक चलेगा ?' वह जानती थी कि चेक नहीं चलेगा। वह कई बार चेक-बुक निकालकर देख चुकी थी। चेक लिखते-लिखते कहती, "ऐसा करती हूँ। आध घण्टे में आकर ले जाती हूँ। आपका दिल भी धक-धक रहा होगा कि क्या पता चेक कैश होगा या नहीं···"और यह सुनते ही दूकानदार की जान-में-जान आती और वह कहता : "अरे बहनजी, यह क्या बोलती हैं आप ? आपकी दूकान है। जितना सामान जी चाहे ले जाइए। पैसे कहाँ भागे जा रहे हैं।···"पर यह कहते-कहते वह सारी को रैप करना बन्द कर देता और उसे एक तरफ फेंकते हुए कहता, "वैसे आपकी मर्जी। आध घण्टे के बाद ले जाइयेगा।"···और बात खत्म हो जाती। पर यह दूकानदार चेक लेने पर न सिर्फ यह कि तैयार हो गया था बल्कि जिद कर रहा था कि बिना साड़ी लिये वह रमा को जाने ही नहीं देगा। और रमा को मजबूरन चेक लिखना पड रहा था। चेक लिखने में कोई हर्ज नहीं था। पर बैंक में २७ रुपये २४ पैसे थे और साड़ी थी एक सौ अट्ठारह की। तो रमा ने जैसे ही मिठ्ठा को देखा, उसने वैसे ही, चील की तरह उसपर झपट्टा मारा। दूकानदार ने अपने सेल्ज-मैन से कहा : "अब साली साड़ी खरीदने नहीं आयेगी।"

और यूँ एक दिन मेहराबाद में सरला और रमा की मुलाकात हो गयी और सरला को रमा पसन्द भी आ गयी। सरला की मुस्कुराहट देखकर मिठ्ठा के इश्क पर ओस पड गयी। वह समझ गया कि अब उसकी दाल नहीं गल सकती। चुनांचे सरला और रमा की दोस्ती हो गयी। सरला की गाड़ी कालोनी में आने लगी। सरला रमा को पिक्चरें दिखलाने लगी। साड़ियाँ प्रेजेंट करने लगी।···पर वह दोनों एक-दूसरे पर इधर-उधर ताने भी मारती रहीं। रमा इसलिए ताने मारती कि दूसरों पर रोब डाल सके कि इतनी बड़ी गाड़ी पर आनेवाली सरला पर वह पैसे खर्च करती है और सरला इसलिए ताने मारती कि कोई समझ न जाये कि वह रमा के बारे में क्या सोचती है। नौकरानीवाली बात इधर-उधर फैल चुकी थी और बिल्डिंग की माएँ अपनी बेटियों को उससे बचाने लगी थीं। तो वह यह नहीं चाहती थी कि यह बातें वक्त से पहले रमा को मालूम हों।

फिर एक दिन ऐसा हुआ कि सरला एक जगह पूजा में गयी हुई थी।

रमा नहीं जा सकी थी क्योंकि उसकी तबीयत सुस्त थी तो मौके का फ़ायदा उठाते हुए मिढा सरला की तरफ़ से रमा की तबीयत पूछने आ गये। रमा के सर में दर्द हो रहा था। वह जिद करके उसका सर दबाने लगे।··· उनके खून की रफ़्तार अभी बहुत तेज नहीं हुई थी। बस, यह हो रहा था कि उनके हाथ कभी-कभार फिसलकर रमा के सर से उसकी गरदन तक आ जाते थे। उसकी गरदन बड़ी खूबसूरत थी।···कि भोलानाथ आ गया। मिढा घबरा गया। दूसरे दिन रक्षा-बन्धन था। बाकी सारा दिन भोलानाथ और रमा में लड़ाई हुई। और दूसरे दिन मिढा ने रमा से राखी बँधवा ली।

सच्ची बात यह है कि इसमें रमा बेचारी का कोई दोष नहीं था। पर रमा का ख़याल था कि दुनिया में भोलानाथ से ज़्यादा खूबसूरत कोई और मर्द ही नहीं है। और भोलानाथ भी रमा के इस खयाल से पूरी तरह सहमत थे। रमा के बारे में उनका भी कुछ इससे मिलता-जुलता खयाल था। इसलिए भोलानाथ को ज़रा किसी पर शक होता तो वह तड़ से उसके हाथ में रमा से राखी बँधवा देते। कर साले इश्क अपनी बहन से ! बाद में तो यह होने लगा कि जहाँ रमा किसी को राखी बाँधती, लोग ताड़ जाते कि क्या किस्सा है।

मिढा के राखी बँध जाने के बाद सरला ने भी इतमीनान का साँस ली। उसे थोड़ा-सा शक था कि शायद रमा मिढा में दिलचस्पी ले रही है। इसीलिए वह बड़ी चौकसी से आगे बढ़ रही थी कि अगर रमा प्यार का खाना ख़ाली दे तो रमा जल्दी में भी अपनी पोजिशन बदल सके। अभी तो वह बस इतना कर रही थी कि घण्टों रमा के बाल बनाती। फ़ेशल करती। ब्लैक-हेड्स निकालती। कहती, "यह क्या साड़ी बाँध रक्खी है तुमने ! पंजाबियों को साड़ी बाँधना कभी नहीं आयेगा।" रमा हँसने लगती। सरला भी हँसने लगती। रमा साड़ी खोल देती। सरला कहती : "हाय रमा, तुम्हारी कमर क्या हुई···" रमा यह सुनकर खुश हो जाती। उसे वाक़ई अपनी कमर बहुत पसन्द थी। सरला हँसते हुए उसकी कमर में हाथ डाल देती और कहती, "उनको तो बड़ी तकलीफ़ होती होगी तेरी कमर तलाश करने में।" इतना कह-कहकर गुदागुदा देती और रमा हँसते-हँसते पलंग पर

गिर जाती, दुहरी हो-हो जाती और सरला उसे सीधा करने के लिए उसके सारे बदन पर फिसलती फिरती।···

सरला से अपनी दोस्ती का रमा ने पहला फ़ायदा यह उठाया कि उसने सरला से साड़ी बाँधना सीख लिया। उसने यह जान लिया कि साड़ी के बॉर्डर के साथ चप्पल का 'मैच' करना कितना जरूरी है। उसे यह भी पता चल गया कि किस रंग की साड़ी के साथ लिपस्टिक का कौन-सा शेड चलता है।···और दूसरा फ़ायदा यह हुआ कि मिढा की सिफारिश पर भोलानाथ खटक ब्लेडों की एक कम्पनी के असिस्टेंट सेल्ज़ सुपरवाइज़र हो गये। तनख्वाह भी बढ़ गयी और आमदनी भी। रमा ने सरला के प्यार से दस हज़ार उधार लेकर उसे सूद पर चलाना भी शुरू कर दिया। और यूँ वह 'सुरसिंगार कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड' में एक फ्लैट बुक करवाने के काबिल हो गयी।

मनचन्दानी के पास बिल्डिंग की प्लम्बिंग का ठीका था। रमा अपना फ्लैट अपनी आँखों के सामने बनते देखना चाहती थी। तो दोनो ही दिन-भर 'सुरसिंगार' में रहते। मनचन्दानी एक हँसमुख मर्द था। रमा एक मिलनसार औरत थी। दोनों में दोस्ती हो गयी। रमा इस फ़िक्र में थी कि दोस्ती की वजह से मनचन्दानी उसके फ्लैट में भी वही माल लगवायेगा जो अपने फ्लैट में लगवानेवाला है। मनचन्दानी को भला एतराज़ हो सकता था, क्योंकि रमा की मुस्कान में अब भी गेहूँ के खेतों का खुशबूदार सोना था। खुली हुई किताब-सी मुस्कुराहट। यदि कुछ वक़्त इस मुस्कुराती हुई रमा के साथ गुज़र जाये तो क्या बुरा है! तब तक मनचन्दानी को यह भी मालूम नहीं हुआ था कि रमा कोई 'ऐसी वैसी' लड़की या औरत नहीं है।···कि उसने खुद अपने चारों तरफ़ एक लक्ष्मणरेखा खेंच रक्खी है···कि उसे सुनहरा हिरन ज़रूर चाहिए पर वह उस हिरन के लिए अपनी बनायी हुई सीमाओं से आगे नहीं बढ़ेगी। वह मनचन्दानी से हँसती-बोलती, उसे चाय पिलाती और फिर शाम को भोलानाथ खटक के साथ अपने घर लौट जाती···उसकी आत्मा की प्लम्बिंग अच्छी थी।

पर भोलानाथ फिर भोलानाथ थे। थोड़े दिनों बाद उन्हें यह शक घुन की तरह लग गया कि बनते हुए फ्लैट में जाने क्या-क्या होता होगा! और

साह्व शक का इलाज तो हकीम लुक़मान के पास भी नहीं था, बिचारी रमा तो किस खेत की मूली थी !

खटकजी का यह शक जब गहरा हुआ तो उनके व्यक्तित्व के लिफ़ाफे पर डाक के टिकट की तरह चिपक गया···और रमा को यह भाँपने में देर नहीं लगी कि दाल में कुछ काला है। चुनाँचे रक्षाबन्धन के दिन मनचन्दानी को राखी बाँधकर अपनी तरफ़ से यह किस्सा खत्म कर दिया। पर उसका दिल बहुत दुखा। वह खटकजी की शक्की तबीयत से आजिज़ आ चली थी। इस शक के पीछे वह अब तक तीन आदमियों को राखी बाँध चुकी थी। हर रात को पेट-भर खाना खाने के बाद भी वह उसे खाते···यहाँ तक कि सुबह होते-होते वह मुश्किल से चौथाई या तिहाई रह जाती। और फिर लाख जतन करके दिन-भर में किसी-न-किसी तरह वह अपने व्यक्तित्व को पूरा करती।

खटकजी—जैसे आदमी के साथ पूरी ज़िन्दगी निभाने का इरादा रखना भी बहादुरी का काम है। अब वह बिचारी यह कैसे याद रखती कि फलवाले से मुस्कुराकर उसने क्या कहा था···डाकिये के सामने वह खाली पेटीकोट-ब्लाउज में क्यों आयी थी...वह इस ज़िल्लत पर मन-ही-मन में कुढ़ती कि क्या उसके लिए फलवाले और डाकिये और पड़ोस के नौकर-चाकर ही रह गये हैं ! वह रोने लगती। वह रोती तो खटकजी का पारा और चढ़ जाता। उनका पारा और चढ़ता तो रमा भी झल्ला जाती और महाभारत शुरू हो जाती। महाभारत शुरू होती तो ग्रेड थ्री के क्लर्कों की कालोनी में हर आदमी के बदन पर हजारों कान उग आते। एक हज़ार बानवे पानेवाले का भी पत्नी से झगड़ा होता है ! इसलिए साबित हुआ कि पत्नियाँ गड़बड़ करती हैं···

इन झगड़ों में पहले तो रमा धीरे-धीरे कोसती रहती और खटकजी पंजाबी, हिन्दी और अंग्रेजी में धाड़ते रहते। परन्तु आजिज़ आकर जब ऊँची आवाज में गालियाँ देना शुरू करती तो खटकजी की आवाज़ धीरे-धीरे धीमी होने लगती। उन्हें एकदम से यह खयाल आने लगता कि वह पास-पड़ोसवालों के कान से बहुत डरते हैं।

दूसरे दिन वह पड़ोसियों का चेहरा देखकर भाँपने की कोशिश करते

कि उन्होंने रात की बातें सुनी हैं तो किस हद तक सुनी हैं। पर ग्रेड थ्री और फ़ोर के अफ़सरों को अपने चेहरे से झूठ बुलवाने की कला खूब आती है। खटकजी को यकीन हो जाता कि किसी को रमा से उनके झगड़े का पता नहीं है और वह किसी दूसरे शक को पाल-पोसकर बड़ा बनाने के लायक हो जाते।

पर जब क्लर्क श्री बाबूलाल श्रीवास्तव ने 'क्वालिटी' में लंच खाकर उन्हें चोट दी तो उन्हें अपने उन तमाम पड़ोसियों से एकसाथ नफरत हो गयी जो उन्हें सुबह-शाम सलाम करते थे और जिनके बच्चे दिन-भर लपक-लपककर उनके घर का सौदा लाते थे और जिनकी पत्नियाँ रमा की समधियाँ थीं और जिनके सहयोग बिना ग्रेड थ्री और फ़ोर के आफिसर्ज़ कालोनी में उनका रहना नामुमकिन हो गया होता।

पर सत्तासी रुपये सोलह पैसे का खाना खिलाना और ही बात है। एक लंच पर आधी तनख्वाह से एक रुपया ज्यादा!

क्लर्क श्री बाबूलाल श्रीवास्तव के सामने तो वह मुस्कुराता रहा, "अरे बाबूलालजी, बैटरों बिचारों को मिलता ही क्या है! टिपों पर तो गुज़र होती है गरीबों की। और साहब, सीधी बात यह है कि अच्छी टिप दीजियेगा तो अच्छी सर्विस मिलेगी।..." यह कहते हुए खटकजी खड़े हो गये। उठ तो खैर बाबूलालजी भी गये, पर वह दिल-ही-दिल में यह सोचते उठे कि यदि एक बेटर दिन में बीस आदमियों को भी खाना खिलाता होगा और यदि पाँच नहीं, तीन रुपये की खाने का औसत माना जाये तो तीस दिन के महीने में बीस तियाँ साठ इनटू थर्टी बराबर अट्ठारह सौ रुपये! ...मतलब यह निकला कि 'क्वालिटी' का बेटर भोलानाथ से ज्यादा कमाता है!

और खटकजी यह सोच-सोचकर, अन्दर-ही-अन्दर, सूखे जा रहे थे कि यह निरानवे रुपये कहाँ से आयेंगे।

उस दिन शाम को भोलानाथ लोकल ट्रेन के एक डिब्बे में बेहोश पाये गये। आध घण्टे तक तो उन्हें यही याद न आया कि वह कौन हैं और कहाँ हैं। उनकी घड़ी और जेब की सारी रकम गायब थी। तीसरी उँगलीवाली नक़ली हीरेवाली अँगूठी भी नहीं थी। पुलिस आ गयी। डाक्टर आ गया।

इसमें कोई दो घण्टे लग गये। और तब धीरे-धीरे उन्हें अपना अता-पता याद आने लगा और फिर उन्हें यह याद आया कि उनकी जेब में कम्पनी के साढ़े बारह हज़ार रुपये भी थे। बयाना-बयानी होने लगी। पंचनामा तैयार हुआ। भोलानाथ को बस इतना याद था कि उनकी सिगरेटें ख़त्म हो गयी थीं। पड़ोस के मुसाफ़िर ने उन्हें अपनी डिबिया से एक सिगरेट दी। पहले एक सिगरेट उसने ख़ुद ली थी और तब उसने इनकी तरफ़ डिबिया बढ़ायी थी। इनको तलब सख़्त थी। इन्होंने एक सिगरेट निकाल ली। पी। पड़ोस-वाले मुसाफ़िर से बातें करते रहे...और फिर क्या हुआ यह उन्हें याद नहीं। पुलिस ने उस मुसाफ़िर का हुलिया पूछा। लम्बा क़द। भरा हुआ बदन। तोते-जैसी नाक। बड़ी-बड़ी मूँछें...वह रुक गये। पुलिस समझी कि वह याद कर रहे हैं। पर वह इसलिए रुके थे कि वह मिढा का हुलिया बयान करने लगे थे। ...पर अब वह बीच में रुक तो सकते नहीं थे। तो उन्होंने मिढा का पूरा नाक-नक़्शा पुलिस को बता दिया। एक बार तो जी चाहा कि पुलिस को नाम और पता भी बता दें। पर दिल मारकर रह गये क्योंकि पुलिस यह न मानती कि एक लखपति पत्नी के पति ने किसी असिस्टेंट बिल-कलेक्टर को डोप किया होगा। इसलिए वह हुलिये से आगे न बढ़े।

वहाँ एक पत्रकार भी आ गया। उसने खटकजी की तस्वीर ली। वह दिल-ही-दिल में ख़ुश हुए कि चलो इसी बहाने पेपर में तस्वीर छप जायेगी। तब पता चलेगा कालोनीवालों को कि भोलानाथ के साथ रहना कितनी बड़ी इज़्ज़त की बात है! ...पत्रकार से बात करते-करते उन्होंने चुपके से घड़ी देखनी चाही तो अपनी कलाई नंगी दिखायी दी और तब वह दिल-ही-दिल में मुस्कुरा दिये कि घड़ी तो साढ़े बारह हज़ार के साथ बम्बई सेंट्रल स्टेशन के क्लोक-रूम में रक्खी हुई है, एक सैकेंडहैंड सूटकेस के अन्दर।

इसी बीच में उनके आफ़िस का भी एक आदमी आ गया। पुलिस ने केस रजिस्टर कर लिया। और खटकजी को घर जाने की इजाज़त मिल गयी। उन्होंने आफ़िस के आदमी से दस रुपये एडवान्स लिये घर जाने के लिए। पत्रकार की घड़ी में सात बज रहे थे। इसका मतलब यह हुआ कि रमा सरला के साथ उसके घर जा चुकी होगी और घर पर मिढा स्काच

व्हिस्की चढ़ा रहा होगा और रमा सरला के बेड-रूम में साड़ी बाँधना सीख रही होगी या लिपस्टिक के शेड समझ रही होगी।

स्काच का खयाल आते ही भोलानाथ की प्यास भड़क उठी।

लिज़ा ने दरवाज़ा खोला।

लिज़ा सरला की नयी नौकरानी का नाम था। कैथोलिक थी। कन्फेशन में जाती तो सरला की बात छोड़ जाती। पर अपने ब्वाय-फ्रेंड को हँस-हँसकर सरला की तमाम बातें बताती। और फिर दोनों सरला पर हँस पड़ते। मिढा भी लगातार उससे हल्का-फुल्का फ्लर्ट करने की कोशिश कर लेते थे।

यह लिज़ा खटकजी को भी अच्छी लगती थी। और उसकी वजह से उन्होंने 'मिढाज़' के यहाँ आना जाना काफी बढ़ा दिया था। लिज़ा की वर्ष-गाँठ पर उन्होंने उसे लाल गुलाब की एक कली भी दी थी और रमा, सरला और मिढा के सामने हँसते-हँसते उससे, अंग्रेज़ी में, यह भी कह दिया था कि उन्हें उससे प्यार हो गया है। इस पर कहकहा पड़ा था और लिज़ा भी हँस दी थी और हँसके उसने खटकजी को ज़बान भी दिखा दी थी। वह ज़बान अभी से केंचवे की तरह खटकजी के बदन पर रेंग रही थी। वह, इस बीच में, कई बार रमा को लिज़ा बनाकर उसके साथ सो भी चुके थे। और एक बार तो उन्होंने रमा को लिज़ा पुकार भी लिया था। वह तो खैरियत यह हुई कि रमा तब अपने ब्लाउज़ के बटन लगाने में गुम थी और उसने सुना ही नहीं कि खटकजी ने उसका नाम बदल दिया है।···

लिज़ा उन्हें देखकर मुस्कुरा दी। वह भी मुस्कुरा दिये।

बस, यह इश्क कोई साल-भर से यहीं टिका हुआ था।

अन्दर मिढा स्काच पी रहे थे।

बेड-रूम से सरला और रमा के हँसने की आवाज़ आ रही थी।

मिढा खटकजी को देखकर मुस्कुराया, हालाँकि अब उन्हें देखकर खुश होने को जी नहीं चाहता था। अरे भई, रमा से इश्क ही नहीं लड़ाना है तो उसके पति को देखकर खुश होने की ज़रूरत ही क्या है! फिर भी सरला के डर से मुस्कुराना तो था ही। तो मुस्कुराकर मिढा ने अपना फर्ज़ अदा कर दिया।

इसमें कोई दो घण्टे लग गये। और तव धीरे-धीरे उन्हें अपना अता-पता याद आने लगा और फिर उन्हें यह याद आया कि उनकी जेव में कम्पनी के साढ़े वारह हज़ार रुपये भी थे। वयाना-वयानी होने लगी। पंचनामा तैयार हुआ। भोलानाथ को वस इतना याद था कि उनकी सिगरेटें खत्म हो गयी थीं। पड़ोस के मुसाफ़िर ने उन्हे अपनी डिविया से एक सिगरेट दी। पहले एक सिगरेट उसने खुद ली थी और तव उसने इनकी तरफ़ डिविया वढ़ायी थी। इनको तलव सख्त थी। इन्होंने एक सिगरेट निकाल ली। पी! पड़ोस-वाले मुसाफ़िर से वातें करते रहे···और फिर क्या हुआ यह उन्हें याद नहीं। पुलिस ने उस मुसाफ़िर का हुलिया पूछा। लम्वा क़द। भरा हुआ वदन। तोते-जैसी नाक। वड़ी-वड़ी मूंछें···वह रुक गये। पुलिस समझी कि वह याद कर रहे हैं। पर वह इसलिए रुके थे कि वह मिढा का हुलिया वयान करने लगे थे।···पर अव वह वीच में रुक तो सकते नहीं थे। तो उन्होंने मिढा का पूरा नाक-नक़्शा पुलिस को वता दिया। एक वार तो जी चाहा कि पुलिस को नाम और पता भी वता दें। पर दिल मारकर रह गये क्योंकि पुलिस यह न मानती कि एक लखपति पत्नी के पति ने किसी असिस्टेंट विल-कलेक्टर को डोप किया होगा। इसलिए वह हुलिये से आगे न वढ़े।

वहाँ एक पत्रकार भी आ गया। उसने खटकजी की तस्वीर ली। वह दिल-ही-दिल में खुश हुए कि चलो इसी वहाने पेपर में तस्वीर छप जायेगी। तव पता चलेगा कालोनीवालों को कि भोलानाथ के साथ रहना कितनी वड़ी इज्ज़त की वात है!···पत्रकार से वात करते-करते उन्होंने चुपके से घड़ी देखनी चाही तो अपनी कलाई नंगी दिखायी दी और तव वह दिल-ही-दिल में मुस्कुरा दिये कि घड़ी तो साढ़े वारह हजार के साथ वम्वई सेंट्रल स्टेशन के क्लोक-रूम में रक्खी हुई है, एक सैकेंडहैंड सूटकेस के अन्दर।

इसी वीच में उनके आफ़िस का भी एक आदमी आ गया। पुलिस ने केस रजिस्टर कर लिया। और खटकजी को घर जाने की इजाज़त मिल गयी। उन्होंने आफ़िस के आदमी से दस रुपये एडवान्स लिये घर जाने के लिए। पत्रकार की घड़ी में सात वज रहे थे। इसका मतलव यह हुआ कि रमा सरला के साथ उसके घर जा चुकी होगी और घर पर मिढा स्काच

व्हिस्की चढ़ा रहा होगा और रमा सरला के बेड-रूम में साड़ी बाँधना सीख रही होगी या लिपस्टिक के शेड समझ रही होगी।

स्काच का खयाल आते ही भोलानाथ की प्यास भड़क उठी।

लिज़ा ने दरवाज़ा खोला।

लिज़ा सरला की नयी नौकरानी का नाम था। कैथोलिक थी। कन्फ़ेशन में जाती तो सरला की बात छोड़ जाती। पर अपने ब्वाय-फ्रेंड को हँस-हँसकर सरला की तमाम बातें बताती। और फिर दोनों सरला पर हँस पड़ते। मिढा भी लगातार उससे हल्का-फुल्का फ़्लर्ट करने की कोशिश कर लेते थे।

यह लिज़ा खटकजी को भी अच्छी लगती थी। और उसकी वजह से उन्होंने 'मिढाज़' के यहाँ आना जाना काफ़ी बढ़ा दिया था। लिज़ा की वर्षगाँठ पर उन्होने उसे लाल गुलाब की एक कली भी दी थी और रमा, सरला और मिढा के सामने हँसते-हँसते उससे, अंग्रेज़ी में, यह भी कह दिया था कि उन्हें उससे प्यार हो गया है। इस पर कहकहा पड़ा था और लिज़ा भी हँस दी थी और हँसके उसने खटकजी को ज़बान भी दिखा दी थी। वह ज़बान जभी से केंचवे की तरह खटकजी के बदन पर रेंग रही थी। वह, इस बीच में, कई बार रमा को लिज़ा बनाकर उसके साथ सो भी चुके थे। और एक बार तो उन्होंने रमा को लिज़ा पुकार भी लिया था। वह तो खैरियत यह हुई कि रमा तब अपने ब्लाउज़ के बटन लगाने में गुम थी और उसने सुना ही नहीं कि खटकजी ने उसका नाम बदल दिया है।···

लिज़ा उन्हें देखकर मुस्कुरा दी। वह भी मुस्कुरा दिये।

बस, यह इश्क़ कोई साल-भर से यहीं टिका हुआ था।

अन्दर मिढा स्काच पी रहे थे।

बेड-रूम से सरला और रमा के हँसने की आवाज़ आ रही थी।

मिढा खटकजी को देखकर मुस्कुराया, हालाँकि अब उन्हें देखकर खुश होने को जी नहीं चाहता था। अरे भई, रमा से इश्क़ ही नहीं लड़ाना है तो उसके पति को देखकर खुश होने की ज़रूरत ही क्या है! फिर भी सरला के डर से मुस्कुराना तो था ही। तो मुस्कुराकर मिढा ने अपना फ़र्ज़ अदा किया।

"क्रि हाल..." खटकजी ने पंजाबी शुरू की। वह मिढा से हमेशा जाबी बोलते थे, क्योंकि वह जानते थे कि मिढा पंजाबी से जलता है। यूँ ह मिढा को रमा से इश्क़ करने की सज़ा भी दे लिया करते थे।

मिढा पंजाबी नहीं था। उसके माता-पिता ज़रूर पंजाबी थे। उसने तो दिल्ली के एक शरणार्थी कैम्प में जन्म लिया था। फिर उसके पिता ने लखनऊ में वक़ालत शुरू की जो नहीं चली। पर मिढा का पालन-पोसन लखनऊ ही में हुआ। और वह लखनऊ की धुली और इस्त्री की हुई खड़ीबोली बोलने लगा। मसनवी 'ज़हरे-इश्क़' और मसनवी 'गुलज़ारे-नसीम'* के शेर गुनगुनाने लगा। 'आतिश' की शायरी पर बहस करता और 'अनीस' के मरसियों पर सर धुनता। बी. ए. तक उसने उर्दू पढ़ी और फिर सरला से शादी कर ली जो हिन्दी-उर्दू को गँवारू भाषा समझती थी और घर में अंग्रेज़ी बोला करती थी। अंग्रेज़ी मिढा को भी पसन्द थी। पर सरला की ज़िद में वह अंग्रेज़ी से नफ़रत करने लगा था। बची पंजाबी। तो पंजाबी से नफ़रत करके वह अपने पिता को सज़ा दे रहा था जिन्होंने सरला से उसकी शादी करवायी थी। ···एक दिन शराब की झोंक में वह अपने दिल की बातें खटकजी को बता गया था। यह तब की बात है जब खटकजी ने उसे रमा का सर दबाते नहीं देखा था। और अब भोलानाथ उसी का फ़ायदा उठा रहे थे।

भोलानाथ आराम से बैठकर अपने लिए व्हिस्की बनाने लगे। मिढ के लिए तो भोलानाथ उसके खून का गिलास बना रहे थे। पर वह मुस्कुराता रहा क्योंकि उसने मुस्कुराना सीख लिया था। और बेड-रूम : अब भी सरला और रमा के हंसने की आवाज़ आ रही थी···

"जस्ट ट्राई इट डार्लिंग।" यह सरला की आवाज़ थी।

'मुझे तो नाथ की तरफ़ से परेशानी हो रही है।" यह रमा : आवाज़ थी।

फिर सरला की हँसी की आवाज़ जो बड़ी गन्दी, बड़ी बेहूदा, अश्लं

---

* उर्दू की दो मशहूर मसनवियाँ, एक नवाब मिरज़ा 'शौक़' की, दू दयाशंकर 'नसीम' की।

हो गयी। पर भोलानाथ को उस हँसी पर सोचने का मौका नहीं मिला क्योंकि उसी वक्त लिज़ा बर्फ़ लेकर आ गयी और बर्फ़ को मेज़ पर रखने के लिए झुकी। वह झुकी तो गहरे गले की फ्राक भी आगे की तरफ़ झुकी और भोलानाथ ने ब्रेज़ियर से झांकती हुई छातियों की झलक देख ली। लिज़ा भी सब समझती थी। पल-भर को झुकी रही। और उस पल-भर में भोलानाथ और मिर्ज़ा दोनों के बदन का सारा लहू चेहरे पर खिंच आया और उनके दिल उनकी कनपटियों में धड़कने लगे और हलक़ सूख गये और लिज़ा खिलखिलाके हँस दी। हँसते हुए उसने पहले मिर्ज़ा की तरफ़ देखा, फिर भोलानाथ की तरफ़। दोनों उसके ब्लाउज़ में झांक रहे थे। वह सीधी हो गयी और बोली, "यू नाटी ब्वाएज़ !" और फिर वह हँसती हुई किचन की तरफ़ चली गयी और वह दोनों उसे जाता हुआ देखते रह गये। लिज़ा जानती थी कि वह दोनों उसे देख रहे हैं तो उसके कूल्हों की लचक ज़रा और बढ़ गयी।

लिज़ा ने किचन में अपने ब्वाय-फ्रेंड को इन आँखों की बात बतायी। दोनों हँसने लगे और सिटिंग-रूम तक सरला-रमा की हँसी के साथ लिज़ा-पीटर की हँसी की आवाज़ भी आने लगी।

पीटर का असली नाम रामनाथ था। कानपुर का रहनेवाला था। कई बरस पहले राजेश खन्ना बनने और मुमताज़ से इश्क़ करने बम्बई भाग आया था। बम्बई आने के बाद दस-बारह दिन तो वह राजेश खन्ना के कार्टर रोडवाले घर के सामने से टला ही नहीं। राजेश खन्ना को आते-जाते देख लेता और बस। फिर वह राजेश खन्ना के घर के सामने खड़ा-खड़ा बोर हो गया तो स्टूडियोज़ के चक्कर लगाने लगा जहाँ उसकी तरह के और बहुत-से लड़के भी हुआ करते थे। वह चूँकि घर से ढाई-तीन सौ रुपये लेकर भागा था इसलिए उसे भूख की तकलीफ़ नहीं थी। जी-भर स्टारों का तमाशा देखता और रात को कहीं-न-कहीं पड़कर सो जाता। उसे हिन्दी फ़िल्मोंवाले किसी पुलिस कान्सटेबिल या 'दादा' ने परेशान भी नहीं किया और उसके दिल से बम्बई का डर निकल गया। मिडिल पास था, इसलिए खाली समय में वह फ़िल्मों के लिए कहानियाँ लिखने लगा। एक दिन एक ईरानी चायख़ाने में वह अपने कुछ बम्बइय्या दोस्तों को उनके

व खिला रहा था और अपनी एक 'स्टोरी' सुना रहा था जो राजेश खन्ना ेर मुमताज़ के लिए विल्कुल 'फ़िट' थी। उसे यह पता नहीं था कि श्री न्दा पटयालवी उसके पीछेवाली मेज़ पर बैठे अपनी किसी फ़िल्म का ीन लिख रहे थे। सीन यह था कि हीरो किसी ईरानी चायखाने में बैठा ाश्ता कर रहा है और बॉस का इन्तिज़ार कर रहा है। हीरो दर-अस्ल ी. आई. डी. का इन्सपेक्टर था पर बॉस का पता चलाने के लिए उसके ारोह में शामिल हो गया था और स्मगलिंग का धन्धा कर रहा था और हीरोइन से इश्क़ लड़ा रहा था क्योंकि हीरोइन बॉस की लड़की थी···हीरो का इश्क़ भी ड्यूटी बना हुआ था···यह सब तो ठीक। पर श्री फन्दा पटयालवी कोई सात साल से किसी ईरानी चायखाने में गये ही नहीं थे। सात साल पहले वह इस लायक़ नहीं थे कि ईरानी चायखाने में जाकर चाय पियें। कभी कोई दोस्त फँस जाता तो वह एक तिकोना और एक प्याली चाय खा-पी लेते। फिर उनकी एक फिल्म हिट हो गयी और उन्होंने कार खरीद ली। अब ईरानी चायखाने इस लायक़ न रह गये कि श्री फन्दा वहाँ चाय पीने जाते। धड़ा-धड़ उनकी सात-आठ फिल्में हिट हो गयीं। प्रोड्यूसर और स्टार उनके आगे-पीछे घूमने लगे। आज राजेश खन्ना के यहाँ डिनर है। कल दिलीपकुमार उनके बच्चे की सालगिरह पर कोई मँहगा स्मगल किया हुआ खिलौना लिये खड़े हैं। सुनीलदत्त दूर से देख लेते हैं तो हाथ हिलाते हैं। देवानन्द बयान दे रहे हैं कि श्री फन्दा पटयालवी से अच्छा लेखक आज तक बम्बई आया ही नहीं। भगवती बाबू, यशपाल, अमृतलाल नागर, मण्टू, कृष्णचन्द्र, इसमत चुग़ताई, राजेन्द्रसिंह वेदी···सब गये तेल बेचने। आधुनिक हिन्दी साहित्य में तो बस एक नाम है, श्री फन्दा पटयालवी। श्री फन्दा एक क्रान्तिकारी लेखक थे। उन्होंने पहली बार मध्यम वर्ग के जीवन और उसकी राजनीति को हिन्दी फिल्मों से परिचित करवाया। 'मज़दूर का बेटा', 'क़ातिल कौन', 'चालीस अली बाबा, एक चोर' 'क़सम'···आधे दर्जन से ज़्यादा क्रान्तिकारी फिल्में लिख लेने के बाद श्री फन्दा को खयाल आया कि उन्हें एक आफ़-बीट फिल्म लिखनी चाहिए उन्होंने खुद ही उसे डाइरेक्ट करने का फ़ैसला भी किया। और उस कहानी में कमबख्त हीरो एक ईरानी चायखाने में आ गया। श्री फन्दा ने दिमा

पर बहुत ज़ोर दिया कि ईरानी चायख़ाना याद आ जाये, पर जब वह किसी तरह याद न आया तो उन्हें ईरानी चायख़ाने में चाय पीने जाना ही पड़ा। उनके पी. आर. ओ. ने एक फोटोग्राफर भी भेज दिया। उसका ख़याल था कि यह तस्वीरें श्री फन्दा का इमेज बनाने में सहायता करेंगी। चुनांचे वह सीन लिख रहे थे और फोटोग्राफर तस्वीरें खींच रहा था और चायख़ाने के शोर में छन-छनकर रामनाथ की आवाज़ आ रही थी और फन्दा पटयालवी को यह फ़ैसला करने में देर नहीं लगी कि रामनाथ एक आरिजिनल, धांसू और गोल्डन जुबिली 'सब्जेक्ट' सुना रहा है। तो फन्दाजी ने कलम रख दिया। फोटोग्राफर अपने काम में लगा रहा। फन्दाजी रामनाथ की कहानी सुनते रहे।··

चायख़ाने से उठते-उठते रामनाथ फन्दाजी का नौकर हो गया।

रामनाथ ने फन्दाजी का नाम तो सुन ही रखा था क्योंकि वह राजेश खन्ना बनने आया था और राजेश खन्ना फन्दाजी की कई हिट कहानियों में काम कर चुका था। इसलिए वह उनके यहाँ नौकरी करने पर फ़ौरन तैयार हो गया। उसका ख़याल था कि राजेश खन्ना फन्दाजी के घर तो आता ही होगा।

पर फन्दाजी की तो नीयत ही कुछ और ही थी। वह तो यह चाहते थे कि रामनाथ के जीनियस की फिल्मवालों में से किसी को हवा भी न लगे। वह उसे इटैलियन फियट पर अपने फ्लैट ले गये। सी फ्रीज़ के बाइसवें माले पर उनका फ्लैट था। सामने अरब सागर था। पीछे बम्बई। रामनाथ को यह फ्लैट बहुत अच्छा लगा और उसने तय किया कि स्टार बन जाने के बाद वह इसी बिल्डिंग में फ्लैट ले लेगा।

चूँकि रामनाथ मिडिल पास था, इसलिए उसे कोई काम नहीं आता था। तीन बेटियों पर एकलौता बेटा था इसलिए घर में उसकी बड़ी मान-जान थी। उससे कोई काम नहीं लिया जाता था। उसके पिता बाबू चन्द्रिका प्रसाद कानपुर की म्युनिसिपल कार्पोरेशन में क्लर्क थे। चुंगी पर काम करते थे, इसलिए भगवान की दया और अल्लाह के करम से ऊपर की आमदनी काफ़ी थी। चमनगंज में उनका अपना दोमंजिला पक्का मकान था–'रामनाथ भवन'। रामनाथ को मालूम था कि यह भवन उसका

है। तो भला उसे काम करने की क्या जरूरत थी ! इसलिए जब फन्दाजी की पत्नी को पता चला कि उसे कोई काम ही नहीं आता तो वह बहुत बिगड़ी कि ऐसे आदमी को पचास रुपये तनखाह देने से क्या हासिल ! और फिर यह कि घर में पन्द्रह बरस की बेटी है···पर फन्दाजी ने पत्नी की एक न सुनी और रामनाथ ने पहला इश्क़ फन्दाजी की बेटी पुष्पलता से किया। ख़ैर यह कहना ग़लत है कि रामनाथ ने पुष्पलता से इश्क़ किया, क्योंकि पुष्पलता इस लायक़ ही नहीं थी कि कोई लड़का उससे इश्क़ करता। पर पुष्पलता ने उसे अपने इश्क़ पर नौकर रख लिया। पचास रुपये महीने उसे पुष्पलता से भी मिलने लगे। और सौ रुपये महीना, पचास रुपये महीने से अच्छा होता है।

पुष्पलता बिचारी की अपनी समस्याएँ थीं। उसकी तमाम सहेलियाँ किसी-न-किसी पर आशिक थीं। उनके साथ पिक्चरें देखने जाती थीं। बैंडस्टैंड की चट्टानों के पीछे अपने बॉय-फ्रेंड्ज़ के साथ नेकिंग करती थीं। दो-एक तो नेकिंग की हदों से भी आगे निकल चुकी थीं। दस-बारह चरस के सिगरेट पीती थीं। दो-चार एल. एस. डी. की यात्राएं भी करने लगी थीं। नेशनल कॉलेज में वे आपस में खूब-खूब बातें करतीं और बिचारी पुष्पलता अपने-आपको अकेला पाती क्योंकि उसके पास अपनी दोस्तों से कहने लायक़ न कोई किस्सा था, न कोई अनुभव।

पुष्पलता एक बदसूरत लड़की थी और फन्दाजी की कहानियों में भी कोई बदसूरत लड़की हीरोइन नहीं होती थी कि वह अपने-आपको वह हीरोइन ही फर्ज़ कर सकती।···तो उसकी जिन्दगी सूनी गुजर रही थी। जिन्दगी जिसकी कोई दिशा नहीं थी। जिन्दगी जिसका कोई अर्थ नहीं था। फन्दाजी को इतनी फ़ुरसत न थी कि पुष्पलता की समस्याओं पर सोचते और उसकी माँ पड़ोसिनों से बातें करने, साड़ियाँ ख़रीदने, गहने बनवाने में इतनी गुम थी कि कभी-कभी तो वह यह भी भूल जाती कि वह एक जवान बेटी की माँ है।

राधिका, पुष्पलता की माँ, की सूरत भी अच्छी थी और काठी भी। वह ज्यादा-से-ज्यादा अपनी बेटी की बड़ी बहन लगती थी। जरा ध्यान से मेक-अप करती तो उसकी छोटी बहन दिखायी देने लगती। इसलिए पुष्प-

लता की बदसूरती से वह दिल-ही-दिल मे खुश भी थी कि जो घर में एक खूबसूरत जवान बेटी उसे मम्मी पुकार रही होती तो उसे अपनी उम्र छिपाने मे परेशानी होती। अब तो यह होता कि जो प्रोड्युसर आता, जो हीरो आता, जो उभरता हुआ सितारा आता वह उसी को देखता, उसी से बातें करता, उसी की बातो पर कहकहे लगाता और वह उतनी देर के लिए कोई मुमताज, कोई शर्मिला टैगोर, कोई हेमा मालिनी बन जाती और मुकेरियों मे गुज़री हुई वीरान जिन्दगी पल-भर के लिए जैसे कही दूर चली जाती और हीर की धुन उसे ओल्ड-फैशण्ड लगने लगती और वह उठ कर रिकार्डप्लेयर पर पश्चिमी सगीत का कोई रिकार्ड लगा देती। वैसे उसे यह संगीत न पसन्द था और न ही समझ मे आता था, पर फ़ैशन तो फिर फैशन है। वह नौशाद, जयदेव, खैयाम और सज्जाद की बुराई करती और आर. डी. एल. पी. और कल्याणजी-आनन्दजी की तारीफों के पुल बाँधती। सब पर यह ज़ाहिर करती कि वह राजेश खन्ना को राखी बाँधती है और एल. पी. (लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल) के साथ तो रोज़ उठना-बैठना है···

कहने का मतलब यह कि राधिका को पुष्पलता के बारे में सोचने का वक़्त ही नही मिलता था और पुष्पलता अपनी माँ के गन्दे-बेतकल्लुफ़ क़हक़हो की भीड में अपने-आपको बिल्कुल अकेली पाती थी। यही कारण है कि फन्दाजी जब रामनाथ को लाये तो पुष्पलता को एक अनजानी-सी खुशी हुई। अपनी इस खुशी का मतलब खुद पुष्पलता की समझ मे फौरन नही आया, पर उसके लिए यही अनुभव बहुत था कि वह खुश है।

रामनाथ ने तो उसे गौर से देखा भी नही, क्योंकि वह तो मुमताज के खयाल के साथ बाथरूमों मे वक़्त गुज़ारा करता था। और बाकी वक़्त फन्दाजी के साथ गुजारा करता था और फन्दाजी घुमा-फिराके कहानियों की बात निकालते और रामनाथ उन्हें अपनी 'ओरिजिनल' कहानियाँ सुनाने लगता और फिर फन्दाजी उन कहानियो मे चेज, कर्टर ब्राउन, गार्डनर, क्रिस्थी···फेंटने मे लग जाते।

रामनाथ ने उनके यहाँ डेढ़ बरस काम किया। इस डेढ बरस मे फन्दाजी ने सात 'ओरिजिनल' कहानियाँ बेची और दूसरे तमाम [illegible]

लेखकों की छुट्टी कर दी। हर फिल्म पार्टी में उन्हीं की बातें होने लगीं और लोग यह कहते सुने गये कि फन्दाजी पटयालवी साढ़े चार लाख लेने लगे हैं। रामनाथ को यह पता भी नहीं चला कि वह फन्दाजी के नाम से बहुत मशहूर फिल्मी लेखक हो गया है, क्यों कि अब उसका काफ़ी वक़्त पुष्पलता के कमरे में गुजरने लगा था।

फन्दाजी तो दिन-रात गायब ही रहते थे। राधिका भी दिन-रात पड़ोस में ही गुजरती थी। फ्लैट में रामनाथ के सिवा कोई न होता। पुष्पलता कॉलिज से आती तो उसे यह ख़याल ही गुदगुदाना शुरू करता कि वह फ्लैट में रामनाथ के साथ अकेली है। वह किसी-न-किसी बहाने से उसे अपने कमरे में बुलाती। वह आ जाता। वह भी ख़ूब समझने लगा था कि पुष्पलता क्या चाहती है। पर वह कोई गिरी-पड़ी चीज नहीं था कि जो चाहे वही पा ले। और गिरी-पड़ी चीज़ उठाने के लिए भी तो झुकना पड़ता है। इसलिए उसने तय कर लिया था कि उसे पाने के लिए भी पुष्पलता को झुकना पड़ेगा···यही हालत कुछ दिनों चलती रही। पुष्पलता ठनकती रही, उसकी तरफ़ देखकर मुस्कुराती रही। उसके हाथ से पानी का गिलास लेते-लेते उसके हाथ को छूती रही···कि एक दिन उसके ब्लाउज के हुक को फँस ही जाना पड़ा और उसने रामनाथ को आवाज़ दी। रामनाथ आया।

"क्या है बीबीजी ?"

पुष्पलता के दोनों हाथ पीठ पर ब्लाउज़ के हुक से उलझे हुए थे।

"जरा यह हुक फँस गया है।" उसने जी कड़ा करके कह दिया। उसका हलक़ सूख रहा था। साँस तेज़ चल रही थी और ख़ून के दबाव से कनपटियाँ फटी जा रही थीं और एक अजीब तरह का मीठा-मीठा-सा डर लग रहा था। उसने रामनाथ की आहट अपनी तरफ़ बढ़ती सुनी तो डर की मिठास और बढ़ गयी···

"क्या करते हो, कोई देख लेगा !"

"बनो मत।" उसने बड़ी बेदर्दी से कहा, "यहाँ मेरे सिवा है कौन कि देख लेगा !" रामनाथ ने उसका ब्लाउज उतार दिया।

उसे इन बातों का कोई अनुभव नहीं था। सब सुनी-सुनायी बातें थीं और कुछ गालियाँ थीं जो उसने कानपुर की सड़कों पर सुनी थीं···तो

उसने सोचा कि उन्हीं गालियों को आजमाना चाहिए।

रामनाथ ने कानपुर की सड़कों पर चलती-फिरती गालियों को आजमाया और यह पाया कि गालियाँ सच्ची और मजेदार हैं।...और उस अकेली दोपहर रामनाथ की आमदनी पचास रुपये बढ़ गयी...

रामनाथ अपनी जिन्दगी से नाखुश नहीं था। वह पुष्पलता को कभी मुमताज मान लेता, कभी शर्मिला टैगोर, कभी वहीदा रहमान...एक-आध बार हेलेन, हेमा मालिनी और बिन्दु तक भी बात आ गयी।

दूसरी तरफ पुष्पलता भी यही खेल खेल रही थी। वह भी अपनी आँखें बन्द कर लेती और रामनाथ के हाथ कभी धर्मेन्द्र के हाथ बन जाते और कभी राजेश खन्ना के...

मतलब यह है कि दोनों खुश थे। शायद यह दोनों यूँ ही बहुत दिनों खुश रहते, पर एक रात राधिका एक पार्टी से लौटी तो उसके बदन के तार खिंचे हुए थे। धर्मेन्द्र ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर, उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा था, "भाभीजी, तुम भी कोई चीज हो...." उसके दिमाग में रास्ते-भर यही बात गूँजती रही। उसने हजार बार दिल-ही-दिल में धर्मेन्द्र से पूछा, "क्या चीज हूँ?" और इस सवाल पर धर्मेन्द्र हँसकर उसकी तरफ थोड़ा-सा और सरक आया। यहाँ तक कि बिलकुल उसके ऊपर आ गया और उसकी साँस घुटने लगी। उसके पंजे कार की सीट की मखमल में गड़ गये...उसे पता भी न चला कि कार कब रुकी और बूढ़े ड्राइवर ने कब कार का दरवाजा खोला।...राधिका को उस वक्त बूढ़ा अली मुहम्मद भी गजब का जवान लगा और वह मुस्कुरा दी।

अली मुहम्मद ने पूछा, "अब गाड़ी रख दूँ बीबीजी?"

उसने अपनी आवाज सुनी, 'हाँ।'

लिफ्ट की तनहाई में फिर धर्मेन्द्र ने उसे अपनी बाँहों में दबोच लिया। और लगा कि जैसे वह लिफ्ट में नहीं बादलों के गदेले पर है और वह गदेला धीरे-धीरे धर्मेन्द्र की साँसों के साथ ऊपर जा रहा है। लिफ्ट रुक गयी और वह साँसें रोके धर्मेन्द्र से कहती रही कि यह क्या करते हो जी...

सोसायटी का चौकीदार लिफ्ट के बाहर खड़ा राधिका के उतरने का इन्तजार कर रहा था। जब राधिका खड़ी मुस्कुराती ही रही तो उसने

घबराकर दरवाज़ा खोला और दरवाज़े के खुलने की आवाज पर राधिका पल-भर के लिए जागी और लिफ्ट से उतर गयी। चौकीदार जाती हुई राधिका को हैरानी से देखता रह गया···

राधिका ने घण्टी बजायी। एक बार। पल-भर रुकी। दरवाजा नहीं खुला। उसने ज़रा लम्बी घण्टी बजायी। रुकी। दरवाजा नहीं खुला। वह झल्लायी और उसने घण्टी पर हाथ रख दिया···रामनाथ ने दरवाज़ा खोला। और राधिका ने देखा कि उसकी कमीज़ के बटन खुले हुए हैं और छाती के सुनहरे रोयें दिखायी दे रहे हैं। वह अब भी धर्मेन्द्र के नशे में थी। डाँटना भूल गयी। मुस्कुरायी और बोली :

"सो गये थे क्या ?"

रामनाथ ने सर हिला दिया।

वह अन्दर आ गयी।

"उल्लू कहीं का!" उसने अपना चेहरा उसके चेहरे के पास ले जाकर कहा और रामनाथ के दिमाग़ में कानपुर की गलियों की गालियाँ गूँजने लगीं। राधिका ने कहा, "कोई इतनी जल्दी भी सोता है ?" उसने अपने पल्लू को सरक जाने दिया और फिर उसे अपने कन्धे पर यूँ फेंका कि रामनाथ उसमें लिपट-सा गया। राधिका हँसने लगी।

"मुझे एक गिलास पानी पिलाके सो जाना।" यह कहती हुई वह अपने कमरे में चली गयी। रामनाथ किचन में चला गया। पुष्पलता अपने बिस्तर पर जागती रही और फन्दाजी एक हीरो के घर एक छोटी हीरोइन को बैठे देखते रहे और छोटी हीरोइन बड़े हीरो के जुमलों पर हँसती रही और कुछ उठाने के लिए बार-बार झुकती रही और उसका ब्लाउज़ भी उसके साथ-साथ झुकता रहा और हीरो ब्लाउज़ के अन्दर झाँकता रहा और फन्दाजी कहानी सुनाते रहे···

"आ जाव।" राधिका ने दस्तक की आवाज़ का जवाब दिया। वह ट्रान्सपेरेंट नाइटी पहने पलंग पर लेटी हुई थी। यह नाइटी दरअसल हेमा-मालिनी की ड्रेसमेकर ने हेमा के लिए बनायी थी। वह उसे एक फिल्म में पहननेवाली थी। पर शूटिंग आगे बढ़ गयी और तीन महीने के बाद जब वह नाइटी पहनने का दिन आया तो पता चला कि अब वह हेमा को

छोटी पड़ रही है। ड्रेस-मेकर से राधिका की जान-पहचान थी तो वह नाइटी राधिका ने खरीद ली। और एक रात यूँ ही वह नाइटी पहनकर लेट गयी···फन्दाजी के लिए। पर फन्दाजी ने गौर ही नहीं किया। वह चड्ढी पहने बाथरूम से बाहर आये और राधिका अपने-आपको नंगी दिखायी देने लगी। उसे वह रात याद आयी तो उसने होंठ सिकोड़ लिये। सामने रामनाथ खड़ा था, ठण्डे पानी का गिलास लिये। राधिका ने अँगड़ाई ली और नाइटी कुछ ऊपर सरक आयी और उसकी पिण्डलियाँ नंगी हो गयीं। राधिका को अपनी पिंडलियाँ बहुत पसन्द थीं। उसने देखा कि रामनाथ पिण्डलियों को देख रहा है।

"आज पिण्डलियों में बड़ा दर्द है। ज़रा दबा दे।" राधिका ने कहा और यह कहते-कहते वह पलंग पर ज़रा परे सरक गयी और पलंग पर उसके लिए जगह बन गयी और रामनाथ के कान के पास मुँह लाकर कानपुर गालियाँ बकने लगा···

पुष्पलता जागती रही। इन्तज़ार करती रही। कुढ़ती रही। आखिर जब उससे न रहा गया तो वह अपने कमरे से निकली। उसने किचन में झाँका। रामनाथ का बिस्तर खाली था। बाथरूम का दरवाज़ा खुला था। सिटिंग-रूम में भी रामनाथ का पता नहीं था। माँ का बेडरूम बन्द था। वह दबे पाँव माँ के बेडरूम की तरफ़ गयी। उसने की होल से झाँका। पलंग दिखायी न दिया, पर माँ के हँसने की आवाज़ आयी। वह यह आवाज़ पहचान गयी। यह तो जैसे खुद उसकी हँसी की आवाज़ थी···वह हँसी, जो रामनाथ से ब्लाउज़ का बटन खुलवाने में आती है।

वह सन्नाटे में आ गयी क्योंकि अब रामनाथ उसका प्रेमी भी था और उसका सौतेला बाप भी। राधिका उसकी माँ भी थी और उसकी रकीब भी। उसने दरवाज़े पर दस्तक दी। हँसी बन्द हो गयी। उसने दरवाज़ा फिर खटखटाया।

"कौन ?"

"मैं।"

मैं। मैं। मैं।···पुष्पलता अपने इस 'मैं' से भर गयी और पहली बार उसे ऐसा लगा मानो उसका भी कोई वुजूद है, राधिका से अलग खुद अपना

एक व्यक्तित्व है। और उस एक पल में वह परछाई से औरत बन गयी। और वह मुस्करायी।···

कमरे का दरवाज़ा खुला। आँखें मलती, जँभाई लेती राधिका ने उसकी तरफ़ देखा और इस बार उसकी निगाहें पुष्पलता के आर-पार भी न देख पायीं। इतनी ही देर में पुष्पलता का व्यक्तित्व जमकर ठोस हो चुका था।

"क्या है?"

यह प्रश्न एक औरत ने दूसरी औरत से किया।

"रामनाथ कहाँ है?"

यह प्रश्न भी एक औरत ने दूसरी औरत से किया।

दोनों औरतों ने एक-दूसरे की आँखों में झाँका। पल-भर के लिए दोनों ने एक-दूसरे का मुक़ाबला किया, फिर राधिका हार गयी। वह बिगड़ गयी। पर पुष्पलता पर उसके बिगड़ने का कोई असर नहीं हुआ। राधिका ने कहा भी कि रामनाथ इतनी रात गये उसके बेड-रूम में क्या कर रहा होगा। यह कहकर उसने दरवाज़ा बन्द करना चाहा, पर पुष्पलता अन्दर आ गयी और पहली बार राधिका को डर लगा और बाथरूम में छिपा हुआ रामनाथ धर्मेन्द्र से रामनाथ बन गया। और पुष्पलता कह रही थी कि रामनाथ को यूँ तो बिना कहे घर से बाहर नहीं जाना चाहिए। कोई काम भी निकल सकता है···कि फन्दाजी आ गये। वहाँ जब बड़ा हीरो छोटी हीरोइन के साथ बेड-रूम में चला गया तो फन्दाजी क्या दीवारों और सोफ़ों को कहानी सुनाते! तो उठ, आये। चौकीदार ने बताया कि बीबीजी आ चुकी हैं। उनका ख़याल था कि घर में सब सो चुके होंगे। इसीलिए उन्होंने घण्टी नहीं बजायी, चुपके से दरवाज़ा खोला कि वह जानते थे कि ज़रा-सी भी आहट हो तो राधिका की आँख खुल जाती है। पर अपने बेड-रूम में रोशनी देखकर वह घबरा गये क्योंकि इतनी रात गये तक राधिका का जागना ख़तरे की निशानी था। मतलब यह है कि वह लेटी-लेटी उसके और हीरोइन के बारे में सोच रही होगी। यानी रात गयी महाभारत में! अपनी बीबी की इसी आदत से वह घबराये रहते थे, क्योंकि अब वह यह कैसे साबित करते कि जिस लड़की की तरफ देखकर वह मुस्कुराये थे, वह

केवल एक सामाजिक मुस्कुराहट थी और उस मुस्कुराहट का कोई मत-लब निकालना ठीक नहीं है। या अगर किसी पार्टी में किसी हीरोइन की बहन या हीरोइन बनने का अरमान रखनेवाली किसी इण्डस्ट्रियलिस्ट की जवान और खूबसूरत या बदसूरत लड़की देर तक उनसे बातें करती रही तो इसमें उनका कोई क़ुसूर नहीं था।···कमरे में बत्ती तो यही कह रही थी कि अब ख़ैरियत नहीं है। पर वह खुद उनका अपना बेडरूम था और वह भागकर कहीं और जा भी नहीं सकते थे। तो जान पर खेलकर, होंठों पर उल्टी-सीधी मुस्कुराहट चिपकाकर वह कमरे में गये और जाते ही समझ गये कि बात कुछ और है।

"क्या बात है?" उसने पूछा।

फन्दा पटयालवी उन पंजाबियों में था जो प्रोड्यूसरों से पंजाबी बोलते हैं और घर के अन्दर हिन्दी कि उनके ख़याल में पंजाबी गँवारू भाषा है। वह बहुत अकड़कर अपने को उर्दू-वाला कहते हैं। इकबाल और गालिब की बात करते हैं। अम्रता प्रीतम से नहीं मिलते। जगन्नाथ 'आजाद' को डिनर पर बुलाते हैं।···

"अरे, तुम इतनी जल्दी कैसे आ गये?" राधिका मुस्कुरा रही थी। फन्दा पटयावली को अपनी आँखों पर यकीन नहीं आया।

"जल्दी? तीन बज रहे हैं।" फन्दाजी ने अपनी घड़ी देखी, "बल्कि तीन बजकर बारह मिनट।" उन्होंने बिल्कुल ठीक वक़्त बता दिया और मसानों के दबाव को फिर महसूस करने लगे। हीरो के यहाँ से उठते-उठते उन्होंने सोचा था कि घर पहुँचते ही वह सीधा पेशाब करेंगे। अब जो पेशाब फिर याद आया तो वह बाथरूम की तरफ़ लपके।

बाथरूम का दरवाज़ा अन्दर से बन्द था। उन्होंने मुड़कर देखा। राधिका और पुष्पलता दोनों ही उनकी तरफ़ देख रही थीं। उनका हाथ दरवाज़े के हैंडिल पर था और वह तेज़ी से यह तय करने की कोशिश कर रहे थे कि यदि बाथरूम का दरवाज़ा अन्दर से बन्द हो और बेडरूम में बीवी के साथ जवान बेटी भी खड़ी हो और दोनों दरवाज़े ही की तरफ़ देख रही हों तो उन्हें क्या करना चाहिए।

"अरे हाँ—" उन्हें जैसे एकदम से कोई बात याद आ गयी और वह

लौट आये। पर उनके लौट आने से किसी ने धोखा नहीं खाया। मगर उन्होंने इस बात की तरफ़ ध्यान ही नहीं दिया, "पुष्पी, वहाँ पार्टी में तुम्हारी वह सहेली मिली थी, क्या नाम है उसका · · ·"

उन्होंने मदद के लिए राधिका की तरफ़ देखा। पर राधिका ने कोई मदद नहीं की। वह चुप खड़ी दाँतों से नाखून कुतरती रही। तो उन्होंने पुष्पलता की तरफ़ देखा। और फिर पूछा, "क्या नाम है उसका ?"

"पहले आप बाथरूम से हो आइए ," पुष्पलता ने बड़ी बेदर्दी से कहा, "मुझे आपसे कुछ बातें करनी हैं।"

"क्या बात है ? बाथरूम जाने की क्या जल्दी है ?" उन्होंने रास्ता निकालना चाहा।

पर पुष्पलता रास्तों की फ़िक्र में नहीं थी। इसलिए वह कुछ नहीं बोली। बस, फन्दा पटयावली की तरफ़ देखती रही। फन्दा बिचारे के पास पुष्पलता की आँखों का कोई जवाब नहीं था। उन्होंने अपनी किसी फिल्मी कहानी में ऐसी कोई सिचुयेशन ही नहीं बनायी थी आज तक। सच्ची बात तो यह कि उनकी कहानियों में बाथरूम ही नहीं आता था। उनका कहना यह था कि यथार्थ के नाम पर कामोड में झाँकना गन्दी बात है। समाज की माओं-बहनों के डर से वह तो अपनी फिल्मी कहानियों में हीरो को हीरोइन के करीब तक नहीं आने देते थे। प्रोड्युसर बहुत ज़ोर डालते तो यह कोई ड्रीम-सीकुयेंस डाल देते। क्योंकि खयाल पर तो किसी का बस होता नहीं। बकिंघम पैलेस का साईस भी मलिका एलिज़ाबेथ का सपना देख सकता था। इसलिए जब जीवन के यथार्थ में फन्दा पटयावली को बाथरूम का सामना करना पड़ा तो वह चकरा गया।

"ठीक है।" उन्होंने कहा, "हो ही आता हूँ ! बाथरूम से। जब तक तुम एक गिलास पानी ला दो। बड़ी प्यास लग रही है।"

पुष्पलता ने सुनी अनसुनी कर दी।

कमरे में सन्नाटा हो गया।

फन्दा पटयावली को बाथरूम के दरवाज़े तक जाना पड़ा। इस बार दरवाज़ा खुल गया। वह अन्दर चला गया। उसने दाहिने-बायें नहीं देखा, सीधा वाश-बेसिन पर जाकर कुल्ली करने लगा। पर सामनेवाले आईने

में रामनाथ साफ़ नज़र आ रहा था'''तौलिये से मुँह पोंछकर फन्दा पटयावली बाहर आ गये।

"हाँ पुप्पी, अब बताओ, क्या कहना है?"

"कुछ नहीं।" पुष्पलता ने कहा।

कोई फिर कुछ नहीं बोला। पुष्पलता चली गयी। फन्दाजी राधिका के साथ अकेले रह गये।

"बहुत नींद आ रही है।" फन्दाजी यह कहकर पलंग पर जा लेटे। उन्होंने दीवार की तरफ़ मुँह कर लिया। रामनाथ चुपके से निकला। उसने मुँह फेरकर लेटे हुए फन्दा पटयालवी की तरफ़ देखा। राधिका की तरफ़ देखा जिसने उसकी तरफ़ एक खामोश-सा बोसा उछाल दिया। वह बाहर चला गया। बाहर जाकर उसने बेडरूम का दरवाज़ा धीरे से बन्द कर दिया। पर जब अपने बिस्तर पर पहुँचा तो यह देखकर चौंक पड़ा कि उस पर पुष्पलता लेटी हुई है। वह घबरा गया।

"और जो साहब या बाई आ गये?" उसने पीछे देखते हुए कहा।

"तो क्या हो गया?" पुष्पलता ने सवाल किया।

"देख लेंगे तो क्या कहेंगे?"

"बाथरूम में देखकर क्या कहा था उन्होंने?" पुष्पलता ने पूछा।

रामनाथ के पास इस सवाल का जवाब नहीं था। और चूँकि उसके पास पुष्पलता के सवाल का जवाब नहीं था, इसलिए वह पुष्पलता के साथ लेट गया और कानपुर की गालियाँ याद करने लगा।

उस रात के बाद से रामनाथ का हौसला बढ़ गया। वह फन्दाजी का नौकर था, पर एक हद तक उन पर हुक्म चलाने लगा। फन्दाजी की समस्या यह थी कि अभी तक उन्होंने रामनाथ की तमाम 'ओरिजिनल' कहानियों पर कब्ज़ा नहीं किया था और उसकी कहानी पर बननेवाली फ़िल्म अगले हफ़्ते रिलीज़ होनेवाली थी और वह यह नहीं चाहते थे कि फ़िल्म की रिलीज़ के वक़्त रामनाथ किसी और घर में हो। और वह यह भी जानते थे कि यहाँ से निकलते ही कोई-न-कोई फ़िल्मी लेखक या हीरो-लेखक उसे हथिया लेगा।

रामनाथ को वड़ा आराम हो गया परन्तु कभी-कभार तो राधिका और कानपुरी गालियों का सम्वन्ध जोड़ना और वात है और दिन-रात यही करना असम्भव। ऊपर से पुष्पलता की माँगें भी वढ़ती जा रही थीं.... माँ के सामने तो उसने झिझकना ही छोड़ दिया था। राधिका के सामने ही वह रामनाथ को छेड़ती और अपने कमरे में चलने के इशारे करती। ज़ाहिर है कि राधिका जलने और चुप रहने के सिवा कुछ नहीं कर सकती थी...

जिन दिनों यह किस्सा चल रहा था, लिज़ा से रामनाथ की मुलाकात हो चुकी थी। उसे लिज़ा अच्छी भी लगने लगी थी। और वह अपने-आपको कुछ-न-कुछ लिज़ा के लिए वचाना चाहता था। उसने लिज़ा को अपने चक्कर नहीं वताये थे। पर लिज़ा कव से कह रही थी कि वह फन्दाजी की नौकरी छोड़कर उसकी वाई के यहाँ नौकरी कर ले। उन्हें ऊपर का काम करनेवाले की ज़रूरत है। रामनाथ जानता था कि ऊपर का काम करने में तो उसका जवाव नहीं है। वह पुष्पलता और राधिका से थक भी गया था। फिर ऐसा हुआ कि उन्हीं दिनों कानपुर से उसका एक दोस्त भागकर वम्वई आ गया। वह उसे फन्दाजी के पास ले गया और वोला, "सेठजी, यह गफ़्फ़ार कानपुरी हमसे भी अच्छा इस्टोरी राइटर है..." चुनांचे ग़फ़्फ़ार कानपुरी फन्दाजी के यहाँ लग गया और रामनाथ मिढा साहव के यहाँ चला गया।

लिज़ा को तो रामनाथ अच्छा लगता था, पर उसकी माँ मिसेज़ डिसूज़ा वड़ी सख्त कैथोलिक थीं और वह इसे गवारा नहीं कर सकती थीं कि लिज़ा कानपुर के किसी हिन्दू को डेट करे। इसलिए रामनाथ पीटर सिंघ हो गया। लिज़ा ने उसे सामने क्रास वनाना और 'एमेन' कहना सिखा दिया। वह इतवार को सूट पहनकर लिज़ा के साथ चर्च जाता। शुरू में तो चर्च से निकलता तो देर तक अपने घुटने सहलाता रहता। पर लिज़ा के लिए वह इतनी कुर्वानी करने को तैयार था।

वाज़ार में ग़फ़्फ़ार कानपुरी से उसकी मुलाक़ात अक्सर होती रहती। फन्दाजी ने उसका नाम राममनोहर कर दिया था कि सुसायटी के लोगों को इस वात पर एतराज़ न हो कि उनके घर में एक मुसलमान नौकर कैसे

काम कर रहा है। तो वह ग़फ़्फ़ार कानपुरी से राममनोहर कानपुरी हो गया था। उसने फन्दाजी से साफ़ कह दिया कि नाम चाहे जो रख लो, पर वह कानपुरी जरूर रहेगा और फन्दाजी ने इस पर कोई खास एतराज न किया।

गफ़्फ़ार कानपुरी उर्फ़ राममनोहर कानपुरी ने पूरी तरह रामनाथ की जगह ले ली। परन्तु गफ्फार रामनाथ से ज्यादा तेज था। उसे कानपुरी गालियाँ भी ज्यादा याद थी। इसलिए उसकी आमदनी भी रामनाथ से ज्यादा हो गयी। रामनाथ ने राधिका से तनख्वाह नहीं ली थी, पर ग़फ्फ़ार ने सोचा कि वह मुफ़्त में क्यों काम करे।

रामनाथ को वह मजे ले-लेकर किस्से सुनाता। पुष्पलता उसे सचमुच अच्छी लग गयी थी। कहता, "क्या लौण्डिया है यार! किरमिच के गेंद की तरह उछलती है।" और यह कि वह पुष्पलता के साथ भागने का प्रोग्राम बना रहा है। रामनाथ ने समझाया कि यह बेवकूफ़ी न करना नहीं तो आज जो पुष्पलता उसका खर्च उठा रही है, उसी पुष्पलता का खर्च उसे उठाना पड़ेगा। साले, चुतिया हो गये हो? पर गफ़्फ़ार वाकई चुतिया हो गया था। ...फिर उन्हीं दिनों एक अजीब घटना घटी जिसकी वजह से गफ़्फ़ार को अपना प्रोग्राम आगे बढ़ाना पड़ा।

हुआ यह कि 'काँच भवन कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी' में फन्दा जी के सामनेवाले फ्लैट में एक मदहोश साहब रहते थे। फिल्मी कहानियाँ लिखते थे और उससे जो समय बचता था उसे रोजे-नमाज में गुजारते थे। उनके घर में एक नौकर, तीन बेटियाँ और एक बीवी के सिवा फिल्म-फेयर की दो ट्राफ़ियाँ रहती थीं। नौकर का नाम अब्दुल हसन था। अब्दुल पुकारा जाता था।

मदहोश साहब सख्त मुसलमान थे। हिन्दू के हाथ का छुआ नहीं खाते थे। कहते थे कि मुशरिक नापाक होता है। होटल में खाना नहीं खाते थे कि क्या पता गोश्त हलाल का है या झटके का। इसलिए अब्दुल की बड़ी मान-जान थी। एक दिन पता चला कि उसका असली नाम तो मुरारीलाल है। बाप का नाम घनश्याम प्रसाद। माँ का नाम रुक्मनी। यानी खान्दानी हिन्दू है। उसके हिन्दू होने का सबसे ज्यादा दुख मदहोश साहब की बड़ी

बेटी आलिया को हुआ क्योंकि वह बड़ी मजहबी बच्ची थी। हिन्दुओं से जरा नहीं डरती थी। चुनाव में मुसलिम लीग का काम करती थी। पर उसे यह पता ऐसे वक़्त पर चला जब वह कुछ कर ही नहीं सकती थी। उस वक़्त वह एक मुसलमान लड़की नहीं थी, केवल एक जवान लड़की थी और उसी से पैसे लेकर अब्दुल ने सीज़र्स पैलेस में कमरा बुक किया था और वह कॉलेज से सीधी वहीं आ गयी थी और कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द था और वह अब्दुल के साथ अकेली थी।···

उसने जब देखा कि अब्दुल मुसलमान नहीं है तो उसके पांव तले की ज़मीन निकल गयी और वह चकराकर अब्दुल की बांहों में आ गयी... अब्दुल जो मुरारीलाल था।

अब यह मुरारीलाल यदि रामनाथ या ग़फ़्फ़ार कानपुरी की तरह समझदार रहा होता तो कुछ हुआ ही न होता। पर उसने तो गज़ब यह किया कि सोसायटी के तमाम नौकरों में यह बात मशहूर कर दी कि मुसलमान लड़कियों का मज़ा ही और होता है। कई नौकरों ने उसके ज़रिये आलिया को चखा भी और सब उससे सहमत भी हुए कि मुसलमान लड़कियों का मजा ही कुछ और होता है। अब राममनोहर उर्फ़ ग़फ़्फ़ार कानपुरी के लिए मुश्किल पड़ी। इस्लाम खतरे में था। तो जब मुरारीलाल उर्फ़ अब्दुल के ज़रिये उसे आलिया को चखने का अवसर मिला तो वह आलिया पर बरसा नहीं। उसने आलिया का गला घोंट दिया।

खलबली पड़ गयी।

राममनोहर कानपुरी गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन के अखबारों में उसकी तस्वीरें छपीं। पत्रकारों का खयाल था कि यह इश्क़ और रिक़ाबत का मुआमला है। अलग-अलग पत्रकारों ने अलग-अलग कहानियां लिखीं। आलिया की तस्वीरें भी छपीं और उसकी छोटी बहनों की भी। नतीजे में उसकी दोनों छोटी बहनों को कई प्रोड्युसरों ने अपनी फिल्मों की हीरोइनों के रोल में साइन कर लिया। खुद मदहोश साहब को कई फिल्में मिल गयीं···

जिस दिन केस शुरू हुआ, उस दिन सोसायटी के तमाम लोगों के अलावा सरला और रमा भी कचहरी पहुँचीं, क्योंकि राममनोहर पीटर का

दोस्त था और पीटर मरला का बावरची। तो ज़ाहिर है कि इन दोनों की हमदर्दियाँ राममनोहर कानपुरी के साथ थी।

"तुम्हारा नाम ?" वकील सरकार ने सवाल किया।

"अब्दुल गफ़्फ़ार वल्द अब्दुल जब्बार कानपुरी..."

फन्दाजी सन्नाटे मे आ गये।

राधिका सन्नाटे मे आ गयी।

पुष्पलता खिलखिलाकर हँस पडी और अदालत से निकाल दी गयी।

"क्या तुमने आलिया बाई का खून किया ?"

"किया साहब।"

"क्यो ?"

"का करते साहब ? हम पूछ रहे कि का मुसलमान मरद सब मर-बिला गये रहे कि ऊ बुरचुदौनी हिन्दुवन से..."

—मैं, राही मासूम रज़ा, यहाँ कहानी मे दाखिल होने की इजाज़त चाहता हूँ। इस कहानी के तमाम पात्र काल्पनिक हैं और आधुनिक भारतीय समाज मे उनका कोई तअल्लुक नही है। यदि किसी को अपनी या अपने किसी दोस्त की झलक मिल जाये तो उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। पर मैं कोई अल्लाह मियाँ तो हूँ नही कि मनगढन्त सूरतें बनाता रहूँ। मैं तो देखी-भाली सूरतों ही को काट-छाँटके अपनी कहानी के काबिल बना लेता हूँ। सच पूछिए तो मैं गफ़्फ़ार कानपुरी या मुरारीलाल की बातें करना ही नही चाहता था। पर यह लोग दरवाज़ा तोड़के कहानी मे घुस आये तो मैं क्या करूँ! पात्र कथाकार से कहीं ज़्यादा शक्तिशाली होते हैं। इसलिए आइए, मिज़ा साहब के किचन मे लौट चलें।

...रामनाथ उर्फ़ पीटर ने लिज़ा के ब्लाउज मे हाथ डाला और लिज़ा ने हँसते हुए उसका हाथ झटक दिया।

लिज़ा ने कहा, "इ क्या करता है मैन!"

रामनाथ ने कहा,"देखता है कि सब खैरियत है कि नही। अरे उ साला लोग का कोई ठीक है। तुम साफ़-साफ़ बोल दयो कि अपन से कब शादी बनायेगा। हम साला तुम्हारा ब्लाउज का वास्ते इहाँ नहीं आया है। फन्दा जो का पर्लैट मे टू-टू ब्लाउज था, और तुम्हारी मम्मी मरने का पिरोगराम

ही नहीं बनाती···"

लिज़ा ने उसके होंठों पर हाथ रख दिया और रामनाथ ने उसका हाथ चूम लिया। यह बातें वह हिन्दी फिल्मों से सीख चुका था।

लिज़ा बोली, "सादी बनायेगा तो रक्खेगा कहाँ ?"

"दिल में।" रामनाथ ने छाती ठोंककर कहा।

"बाथरूम करने कहाँ जायेगा ?"

रामनाथ के पास इस सवाल का जवाब नहीं था। सट-पटाकर चुप हो गया और झेंप मिटाने के लिए उसने किचकिचाके लिज़ा का चुम्मा ले लिया। लिज़ा ने प्यार दे तो दिया, पर प्यार की गर्मी में वह काम की बात नहीं भूली। उसने फिर पूछा, "मैरेज बनाके कहाँ रक्खोगे···?"

सच्ची बात यह है कि रामनाथ शादी के मूड ही में नहीं था। वह लिज़ा से शादी करने के लिए बम्बई नहीं आया था। वह आया था फिल्म-स्टार बनने···फिल्मस्टार न बन सके तो लेखक बनने। लिज़ा तो चाय की एक प्याली थी। थकन मिटाने के लिए वह एक-आध चुस्की ले लिया करता था। पर वह लिज़ा से यह बात कह नहीं सकता था। इसलिए उसने लिज़ा की गरदन में बाँहें डालकर कहा, "डारलिंग, हुकुम दयो। फ्लाट बुक करा लेते हैं टू बेडरूम का···"

इसीलिए जब एक दिन रमा ने मनचन्दानी के लिए थरमस से चाय उँड़ेलते-उँड़ेलते 'सुरसिंगार' में रामनाथ को देखा तो चौंक पड़ी।

"इत्थे की कर रहा है तू ?" रमा ने उसे ललकार लिया कि सरला राह देख रही होगी और वह मटरगश्ती कर रहा है। थोड़ी देर तक तो रामनाथ चुपचाप सुनता रहा। फिर उसने गरदन टेढ़ी करके कहा, "फ्लैट बुक किया है बाई !"

रमा पर जैसे बिजली गिर पड़ी। यह कैसे हो सकता है कि जिस बिल्डिंग में उन्होंने फ्लैट बुक करवा रक्खा है उसी में सरला के नौकर का भी फ्लैट बुक है। मनचन्दानी ने रामनाथ की तरफ़ देखकर बुरा-सा मुँह बनाया।

रामनाथ ने यह बातें नहीं देखीं। वह तो इस खयाल के नशे में था कि वह फ्लैट खरीदनेवाला है। इसलिए खीसें निकालकर उसने कहा, "बहेन

बहेनजी।

रमा सन्नाटे में आ गयी।

"मरे तू!" रमा ने झल्लाकर कहा,'मैं तेरी बहेनजी कब हो गयी?" वह मनचन्दानी की तरफ मुड़ी। "की रब दी शान···" रमा ने ज़माने की खराबी पर एक पूरा लेक्चर झाड़ दिया। यह ज़माना तो केशव के युग से भी कहीं ज्यादा बुरा निकला। उन्हें तो जवान औरतों ने बाबा ही कहा था। यहाँ तो सखी का नौकर बहेनजी कह रहा है और इसी पर बस नहीं। बहेनजी कहके सामने खड़ा मुस्कुरा भी रहा है। इसलिए रमा ने भाषण की तलवार माँजके, अपनी तरफ़ से, रामनाथ के टुकड़े उड़ा दिये।

पर रामनाथ तो अब भी सामने खड़ा मुस्कुरा रहा था।

बोला, "बहेनजी, मैं फिल्म रायटरी करता हूँ···"

रमा की आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। रामनाथ समझ गया कि रमा को यकीन नहीं आया तो उसने जेब से फिल्म राइटर्ज़ असोसियेशन का कार्ड निकालकर सामने कर दिया और तब रमा चोपड़ा को पता चला कि उसने अब तक तीन कहानियाँ बेच भी ली हैं।

हुआ यह कि फन्दा पटयालवी तो रामनाथ के चले जाने के बाद मुसीबत में पड़ गये। रामनाथ के आने से पहले वह दूसरे किस्म की कहानियाँ लिखा करते थे। और उनके बाज़ार में वह पहली-जैसी बात नहीं रह गयी थी। वह परेशान रहने लगे थे कि दो-एक बरस के बाद क्या होगा। और उन्हें इस चक्कर से निकलने का कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था कि भगवान ने रामनाथ को भेज दिया और एकाएक श्री फन्दा पटयालवी की कहानियों का स्टाइल बदल गया। बड़े-बड़े डाइरेक्टर, प्रोड्युसर, प्रोड्युसर-डाइरेक्टर और स्टार उनके आगे-पीछे घूमने लगे। जिसे देखिए, अपनी इम्पोर्टेड कार लिये फन्दा पटयालवी के दरवाज़े पर खड़ा है। और फन्दाजी पहले की तरह फिर लोगों पर फिल्मी दुनिया के बड़े-बड़े नाम लुढ़काने लगे।

"क्या बताऊँ साहब, बी. आर. किसी तरह जान ही नहीं छोड़ते।··· दिलीपकुमार से तो कल मैंने कह दिया कि आप अब रिटायर हो जाइए··· राजजी, मतलब राजकपूर सर हैं कि ख्वाजा साहब से अब काम नहीं चल

रहा है···पर साहब, मैं आदमी हूँ, मशीन तो नहीं हूँ कि कहानियां ढालता जाऊँ···"

फन्दा पटयालवी इसीलिए सबकुछ झेल रहे थे। घर के अन्दर क्या होता है वह किसे मालूम ! वह अपनी बीवी से बोर भी हो चुके थे। रामनाथ की वजह से वह उस मेहनत से भी बचे हुए थे।···और सच्ची बात तो यह है कि रामनाथ ही के दौर में उन्होंने अपना सबसे ज्यादा लोकप्रिय उपन्यास, 'सांच की आंच', लिखा। और इस उपन्यास के बारे में कई आलोचकों ने यह लिखा कि इन दिनों जब कि जीवन के मूल्यों की टूटन की आवाज हर तरफ़ से आ रही है, 'सांच की आंच' लिखकर फन्दाजी ने अपने सामाजिक कर्तव्य का पालन किया है। मनुष्य केवल रोटी के सहारे नहीं जी सकता। उसे जीवन को जीने योग्य बनाने के लिए मूल्यों की ज़रूरत हमेशा रहेगी और फन्दाजी ने पात्रों को पीछे हटाकर मूल्यों को पात्र बनाने की जो हिम्मत की है उसे आधुनिक आलोचना नजर-अन्दाज नहीं कर सकती···

'सांच की आंच' पर पुष्पलता और राधिका दोनों हीं जी खोलके हँसीं। पर उनकी हँसी फ्लैट के अन्दर थी।···

कहने का मतलब यह कि फन्दाजी रामनाथ के बिना जी ही नहीं सकते थे। और रामनाथ को लिज़ा उड़ा ले गयी। पहले तो वह जी-ही-जी में खुश हुए क्योंकि उनको पुष्पलता की तरफ़ देखकर मुस्कुराता हुआ रामनाथ एक आंख नहीं भाता था। दूसरी तरफ़ पुष्पलता-राधिका-रामनाथ त्रिकोण से घर में एक तनाव भी था। पुष्पलता और राधिका में खेंचा-तानी मची हुई थी और दोनों ही रामनाथ को ज्यादा मेह़रबानियों से अपने बस में रखने की कोशिश में लगी हुई थीं। जाहिर है कि उनकी मेहरबानियों का बोझ फन्दाजी की आमदनी पर पड़ता था।···इसलिए पहले तो उन्होंने रामनाथ के जाने पर शुक्र किया। परन्तु एक प्रोड्युसर को कहानी सुनाते-सुनाते उन्हें एकदम से यह एहसास हुआ कि वह अपने पुराने स्टाइल की तरफ़ लौट रहे हैं।

"एक बात दसूं", प्रोड्यूसर ने कहा, "ए इस्टोरी में ओ बात नहीं, रस दी कमी ए···"

फन्दाजी का माथा ठनक गया। और वह इस नतीजे पर पहुँचे कि रवीव के बिना] अब उनका काम नहीं चल सकता। 'साँच को आँच' लिखने की बात ठीक। पर यह भी उतना ही ठीक है कि प्रोड्यूसरों को रामनाथ, मिडिल पास (या फेल), की कहानियों की जरूरत है। और यह भी ठीक था कि उन्होंने इस वादे पर एक उभरते हुए सितारे से पुष्पलता की शादी ठहरायी थी कि वह उसे हीरो लेकर एक फिल्म खुद प्रोड्यूस करेंगे। उस फिल्म और शादी के खर्च के लिए उन्हें लगभग सात-साढ़े सात लाख रुपयों की जरूरत थी और यह रकम वह रामनाथ की मदद के बिना नहीं जमा कर सकते थे। चुनाँचे फन्दा-नायन टीम बन गयी।

हिन्दी फिल्मों की दुनिया आधे-अधूरे लोगों की दुनिया है। यहाँ दो मिलकर तीन नहीं बनते। यहाँ दो के मिलने से एक बनता है। शंकर-जयकिशन, लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल, कल्याणजी-आनन्दजी, सलीम-जावेद, सपन-जगमोहन, फ़ैज़-सलीम, मजीद-नारवी-प्रीत,'''दो से एक बनने का एक पूरा सिलसिला है। हद तो यह है कि यदि एक को अपने में मिलाने के लिए दूसरा नहीं मिलता तो वह अपने एकहरेपन को मिटाने के लिए अपने नाम को दुहरा कर लेता है। श्यामजी-घनश्यामजी।

पर जिन दिनों की बात चल रही है, उन दिनों नामों की जोड़ी केवल फिल्मी संगीत की दुनिया में चालू हुई थी। फन्दाजी ने पहली लेखक-जोड़ी बनायी और अंग्रेज़ी साप्ताहिक स्क्रीन के पूरे पन्ने पर फन्दा-रामनाथ फोटोग्राफ के साथ इस खबर का एलान किया गया और फिल्मी दुनिया में भूचाल आ गया'''

जाहिर है कि फन्दा का पार्टनर मिढा साहब के यहाँ खाना पकाने की नौकरी नहीं कर सकता था। इसलिए फन्दाजी ने उसे वहाँ से अलग होने की राय दी। उसे खार में एक बेडरूम का फ्लैट रहने को दिया। यह फ्लैट बाद में वह अपने दामाद को देने का फ़ैसला कर चुके थे और होने-वाले दामाद को यह बात बता भी चुके थे। इसलिए उन्होंने 'देवनिवास' में अपने लिए जो फ्लैट बुक करवाया था वह रामनाथ के नाम ट्रान्सफर कर दिया गया और यूँ रामनाथ और रमा की मुलाक़ात 'देवनिवास' में हुई।

"···तू क्या करता है ?" रमा ने अचम्भे से पूछा।

"फ़िल्म रायटर।" रामनाथ ने कहा। उसे मालूम था कि रमा यह बात नहीं मानेगी। और रमा ही क्यों, कोई यह बात नहीं मानेगा कि एक बाव-रची लेखक हो गया है, इसीलिए तो उसने ज़िद की कि स्क्रीन में उसका फ़ोटो छपे और स्क्रीन की वह कापी उसकी जेब में थी। उसने वह कापी निकालके रमा के सामने कर दी।

रामनाथ ने यह भी सोच लिया था कि आगे चलकर यह अच्छा नहीं लगेगा यदि किसी पार्टी-वार्टी में सरला या उसकी किसी सहेली या मित्र या उनके किसी दोस्त ने यह कह दिया कि वह तो खाना पकाने की नौकरी किया करता था। इसलिए उसने राम और श्याम के जोड़ पर अपनी भी एक कहानी सोच ली थी। और वह कहानी भी जुड़वाँ भाइयों की थी। जो पीटर सरला के घर खाना पकाया करता था, वह रामनाथ का भाई था। उसने जब यह आइडिया फन्दाजी को दिया तो वह उछल पड़े कि यह तो गोल्डन-जुबिली-आइडिया है।

तो रामनाथ ने इस गोल्डन-जुबिली-आइडिया को रमा पर आज़माने का फ़ैसला किया। बोला, "बहनजी, आप शायद मुझे श्यामनाथ समझ रही हैं जो पीटर के नाम से कहीं खाना पकाया करता था···"

रमा तो अपनी इज्ज़त बचाने के लिए कुछ भी मानने पर तैयार थी। यदि यह वह पीटर नहीं जो सरला के घर खाना पकाता है तो इसके पड़ोसी होने में क्या नुक्सान है ! बात यह है कि सरला के मायके जाने के कारण चूंकि इधर कोई दो महीने से रमा का उधर आना-जाना नहीं हो रहा था, इसलिए उसे यह खबर ही नहीं थी कि पीटर अब वहाँ काम नहीं करता। सरला आज ही लौटी है और रमा मनचन्दानी को, रामनाथ के आने से पहले, यही बता रही थी कि आज सरला आयी है और वह उसे लेने स्टेशन भी नहीं जा सकी और इस पर सरला बहुत लड़ेगी···

वह हँसी, "तुम दोनों की सूरत तो बिल्कुल एक-जैसी है।" उसने थरमोस के ढकने में रामनाथ के लिए चाय उँड़लते हुए कहा। उसने सोचा, अभी दोस्ती कर लो कि बाद में महूरत और प्रीमियर के इनविटेशन माँगने में परेशानी न हो।

रमा रामनाथ से दोस्ती करने पर जुट गयी। मनचन्दानी बीर होकर स्क्रीन पढ़ने लगा और उसे फन्दा-नायन जोड़ी के बारे में कई बातें मालूम हुईं। पंचारण मिश्र, गुजराती-मराठी-हिन्दी-अंग्रेजी पत्रकार ने रामनाथ को रामनाथन बनाकर उसकी पूरी जीवन-कथा लिख दी थी जिससे मनचन्दानी को पता चला कि रामनाथन अपने पिता के अचानक मर जाने के कारण एम. ए. का इमतिहान नहीं दे पाया। युनिवर्सिटी के दिनों को रामनाथन अब भी याद करता है तो उदास हो जाता है। वह टेनिस लाज की बहारें, वह ड्रामा क्लब के हंगामे। रामनाथन को ऐक्टिंग का शौक तो बचपन से है। ऐक्टिंग का शौक उसके स्वर्गवासी पिता को भी था और वह उत्तरप्रदेश की एक मशहूर नाटक-मण्डली का हीरो था···रामनाथ जानता था कि यह तमाम बातें गलत हैं, पर पंचारण मिश्र ने उसे यकीन दिला दिया था कि फिल्मी दुनिया में सबकुछ चलता है। सब जानते हैं कि यह बातें गलत हैं। पर सभी के बारे में यह बातें लिखी जाती हैं और इसीलिए कोई छान-बीन नहीं करता। पचारण मिश्र ने तो अपनी तरफ से रामनाथ के पसन्दीदा लेखकों के नाम भी लिख दिये थे। फन्दाजी ने स्क्रीन का लेख पढ़ने के बाद उसे बताया कि ड्रामा-लेखकों में वह शेक्सपियर और इब्सन का क़ायल है। उपन्यास-लेखकों में बाल्ज़ाक और टॉल्सटॉय का आशिक़ है। कवियों में उसे कीट्स की उदासी और गेटे की नज़र की गम्भीरता अच्छी लगती है···पचारण मिश्र ने इसका खयाल रक्खा था कि ऐसे ही लेखकों और कवियों का नाम लिया जाये जिन्हें फिल्मवाले नहीं पढ़ते पर कभी-कभार जिनकी बातें जरूर करते हैं। हिन्दुस्तानी थियेटर ने जब इब्सन के ड्रामे 'चार्लीज-ऑण्ट' का हिन्दी अनुवाद 'खालिद की खाला' को स्टेज किया तो फिल्मवालों को पता चला कि शेक्सपियर के सिवा भी कोई ड्रामे लिखा करता था। 'माइ फ़ेयर लेडी' की रिलीज़ के बाद उन्हें बर्नड शॉ का नाम भी मालूम हो चुका था, पर इब्सन का नाम लोग बचाये रखते थे। उसके ड्रामों के नाम भी याद कर लिये गये थे और कई स्टार तो इब्सन की बात यूँ करने लगे थे जैसे इब्सन के नाम से सारे ड्रामे उन्होंने लिखे हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए पंचारण मिश्र ने उसके इंटरव्यू में इब्सन का नाम टाँक दिया था।

पंचारण मिश्र का कहना था कि यदि कोई लेखक यह कहके सुदीपकुमार, बलराज कपूर, बृजेन्द्र या रमेश खन्ना को अपनी कोई सड़ी हुई कहानी भी सुना दे कि इस कहानी का आधार इब्सन का कोई ड्रामा है तो यह लोग तुरन्त तैयार हो जायेंगे और फिर लेखक प्रोड्युसर से मनचाहा दाम ले सकता है। बम्बई में कहानी नहीं, हीरो की 'हाँ' बिकती है। और इसी-लिए पंचारण मिश्र ने इंटरव्यू में उसके चहीतों में किसी भारतीय लेखक का नाम तो इसलिए नहीं लिखा कि प्रोड्युसरों को लेखकों के नाम बताना अपने पांव में कुल्हाड़ी मारने के बराबर है। पर जब रामनाथन के चहीते ऐक्टरों की बात निकली तो पंचारण मिश्र ने केवल भारतीय नामों से काम लिया। दो-एक बुझते हुए सितारों के ख़िलाफ़ भी रामनाथ ने अपने ख़यालों का इज़हार किया ताकि उसकी इमेज यह बने कि वह बहुत साफ़-गो और मुँह-फ़ट आदमी है और मसकेबाज़ी के ख़िलाफ़ है।···

मनचन्दानी पर रामनाथ की क़ाबिलीयत का बड़ा रोब पड़ा।

"आप लोग कहानी सोच कैसे लेते हैं?" मनचन्दानी ने सवाल किया।

रामनाथ हँस पड़ा। बोला, "कहानी लिखना कौन-सा मुश्किल काम है? पेन लिया और लिखना शुरू कर दिया।"

यह बात मनचन्दानी की समझ में नहीं आयी। वह सवाल करने ही वाला था कि रामनाथ ने जेब से ५५५ की डिबिया निकाली और मन-चन्दानी की तरफ़ बढ़ायी। मनचन्दानी बीड़ी से तरक़्क़ी करके नये-नये चार-मीनार तक पहुँचा था। उसकी ज़िन्दगी में पहली बार ५५५ सिगरेट की डिबिया पहली बार इस क़दर पास आयी थी। तो उसने एक सिगरेट निकाल ली। रामनाथ ने सुनहरे लाइटर से पहले मनचन्दानी की सिगरेट सुलगवायी और फिर अपनी सिगरेट सुलगायी।

"मगर आप लोगों को यह कैसे पता चल जाता है कि कहानी में किस बात के बाद कौन-सी बात होगी?" मनचन्दानी ने ५५५ का एक लम्बा कश लेने के बाद पूछा।

रामनाथ फिर हँसा।

बात यह है कि पंचारण मिश्र ने उसे यह बात अच्छी तरह समझा दी थी

कि यदि कोई सवाल समझ में न आये या जवाब न मालूम हो तो हमें पढ़ना चाहिए कि पूछनेवाले को यूँ लगे जैसे उसने कोई बेवकूफ़ी की बात पूछी थी और सवाल को हँसी ही में उड़ा देना चाहिए। वैसे पंचारण मिश्र ने उसे तमाम ज़रूरी सवालों के जवाब याद करवा दिये थे। ज़ाहिर है कि पैसे फन्दाजी के खर्च हो रहे थे। और ठहरी यह थी कि कुल कमाई का दस प्रतिशत पंचारण मिश्र लेंगे। साठ प्रतिशत फन्दाजी और तीस प्रतिशत रामनाथ को मिलेंगे। पंचारण मिश्र ने अपने-आपको रामनाथ का सेक्रेट्री भी बना लिया था। इस काम के लिए वह कोई तनख्वाह नहीं बल्कि केवल तीन सौ रुपये महीना कार का खर्च लेनेवाला था। जो बात रामनाथ को मालूम नहीं थी वह यह है कि पंचारण मिश्र फन्दा पटयालवी का पत्ता काटकर खुद रामनाथ के साथ पार्टनरशिप करने की सोच रहा था। और इसीलिए वह रामनाथ का इमेज बूस्ट-अप करने में जी-जान से लगा हुआ था।

सच्ची बात यह कि पंचारण मिश्र अहमदाबाद से फ़िल्म-लेखक बनने आया था। दाल नहीं गली। क्योंकि उन दिनों लेखक मुंशी कहा जाता था। उसके पास, उसके ख्याल में, बेशुमार फ़ैंटास्टिक कहानियाँ थीं। पर पण्डित सुदर्शन, भरत व्यास, शम्स लखनवी वगैरा के सामने प्रेमचन्द, यशपाल, भगवतीचरण, अली अब्बास हुसैनी, कृष्णचन्द्र, बेदी, मण्टू और इसमत चुगताई की नहीं चली तो बेचारे पंचारण मिश्र किस खेत की मूली थे। परन्तु इन्होंने हिम्मत नहीं हारी। लेखक नहीं बन सके तो फ़िल्मी पत्रकार बन गये कि फ़िल्मी पत्रकार करने या बनने में क्या जाता है। पर उससे भी काम न चला तो पब्लिक रिलेशन का काम करने लगे। फ़िल्म फेयर अवार्ड बेचने लगे। अपना फ्लैट हो गया, कार हो गयी, बीवी-बच्चे हो गये, छोटा-मोटा-सा बैंक-बैलेंस भी हो गया। पर वह जो लेखक बनने की फाँस दिल में चुभी हुई थी, वह खटकती रही···यहाँ तक कि फन्दाजी ने उनकी मुलाकात रामनाथ से करवा दी और होनहार बिरवा के चिकने-चिकने पात वाली कहावत पंचारण मिश्र की समझ में आयी और उन्होंने उसी वक्त, पहली ही मुलाकात के बाद, यह तय कर लिया कि अबतक वह बम्बई में रामनाथ ही की राह देख रहे थे···तो उन्होंने गुर की तमाम बातें उसे

बतला दीं। और एक अच्छे शिष्य की तरह रामनाथ उनके कहे पर चलने भी लगा। मनचन्दानी की तरफ देखकर वह यूँ हँसा कि मनचन्दानी झेंप गया।

"बात यह है कि," रामनाथ ने कहना शुरू किया, "पहले तो लेखक, मतलब राइटर, यह सोचता है कि कहानी ट्रैजिडी हो कि हैपी-एण्डिंग वाली। फिर यह सोचता है कि हीरो मजदूर है कि डाक्टर कि डाकू। यह तय हो जाने के बाद तो फिर काम आसान ही आसान रह जाता है..."

मनचन्दानी ने यूँ गरदन हिलायी जैसे कि बात उनकी समझ में पूरी तरह आ गयी हो, जब कि बात उनकी समझ में बिलकुल नहीं आयी थी। पर यही सवाल तीसरी बार पूछने की हिम्मत न पड़ी तो वह यह सोचने लगा कि सिगरेट जल्द-से-जल्द खत्म कर ली जाये तो ५५५ की एक सिगरेट और सुलगायी जा सकती है। पर रामनाथ उसकी नीयत भाँप गया और उसने सिगरेट की डिबिया जेब में रख ली और झल्लाकर मनचन्दानी ने दूसरा सवाल करने के लिए रुख सीधा किया, पर ठीक उसी वक्त भोलानाथ 'खटक' आ गये और रमा ने कहा—

"बड़े मजे दी गल सुनो जी..."

पहले तो भोलानाथ को 'मजे दी गल' पर यकीन नहीं आया क्योंकि सामने बैठा हुआ आदमी साफ़ पीटर था। पर स्क्रीन में उसका फोटो देखकर वह भी चकरा गये और उन्हें मानना पड़ा कि जिन्दगी भी राम और श्याम हो सकती है चाहे उसमें दिलीप कुमार ऐक्टिंग करें या न करें।

भोलानाथ खटक, बिला वजह, अपने-आपको फिल्मों पर सनद मानते थे। फिल्मों से उनका कोई जायज या नाजायज तअल्लुक नहीं था परन्तु उनके बड़े भाई, शोभानाथ चोपड़ा, की शादी फिल्मस्टार रजनीबाला की सौतेली बहन से भी हो चुकी थी और इस नाते हिन्दी फिल्म जगत से वह अपना समधियाना सम्बन्ध मानते थे और फिल्मों के बारे में यूँ बात करते थे मानो हिन्दी की तमाम फिल्में उन्होंने बनायी हैं।

तो भोलानाथ खटक ने मुस्कुराकर रामनाथ की तरफ देखा। रामनाथ भी मुस्कुराया हालांकि वह दिल-ही-दिल में उन्हें माँ-बहन की गालियाँ दे रहा था, क्योंकि रामनाथ के लेखक हो जाने से क्या वह यह भी

भूल सकता था यह हरामी मिश्रा के साथ निशा से छून-छुलैयाँ खेलने की टिप्पस में था।

चूँकि हर आदमी की तरह भोलानाथ भी यही मानते थे कि उनसे अच्छा कथाकार तो आज तक जनमा ही नहीं, इसलिए रामनाथ से मिलते ही उनके दिमाग में कहानियों के केंचवे रेंगने लगे और वह पलँग फ़ारवर्ड में चले गये :

उनकी कहानियाँ डेढ़-डेढ़ दो-दो लाख, डेढ़-दो लाख ही क्यों, सात-सात आठ-आठ लाख में बिक रही हैं। ठीक सागरतट पर दस बेडरूमों वाला उनका बंगला है, एक पत्नी, तीन माशूकाएँ, आठ नौकर, दो नौकरा-नियाँ, चार कारें···

और यूँ रामनाथ से भोलानाथ 'खटक' की दोस्ती हो गयी। बात यह है कि भोलानाथ इसके बहुत कायल थे कि नीचे के लोगों से मिलने-जुलने में खराबी होती है। वह अपनी गिनती बुद्धिजीवियों में किया करते थे और उन्होंने दिल-ही-दिल में, उसी वक़्त यह तय कर लिया कि रामनाथ से उनकी गाढ़ी होगी और उसे उल्लू बनाकर वह अपनी कहानियों के स्क्रिप्ट बनवा लेंगे और चैन की वंसी बजायेंगे—वहीदा रहमान से मिलने का मौक़ा भी मिल जायेगा।

रमा को यह बात बिल्कुल नहीं मालूम थी कि भोलानाथ चुपके-चुपके वहीदा रहमान से इश्क़ करते हैं। वह रमा से, वहीदा का नाम लिये बिना, वहीदा-जैसे बाल बनवाते। उसे वहीदा-जैसे कपड़े पहनाने की कोशिश करते। महीने में एक-आध बार उसके साथ सोते तो दिल-ही-दिल में रमा को वहीदा मान लेते और खुद गुरुदत्त बन जाते। उन्हें यक़ीन था कि वहीदा गुरुदत्त से फँसी हुई थी और वह यह बात यार-दोस्तों को यूँ बताते थे जैसे खास गुरुदत्त से पूछ आये हैं।

···तो रामनाथ की मदद से उनकी कोई कहानी बिक भी सकती थी और वह यह शर्त लगा देने पर तन गये कि वहीदा हीरोइन होगी तो कहानी मिलेगी। उन्होंने उस फ़िल्म के लिए अपनी एक कहानी भी चुन ली। अरे वहीवाली जिसमें विलेन हीरोइन को रेप करने में सफल हो जाता है और हीरोइन गर्भवती हो जाती है और उसे बदनामी से बचाने के

लिए हीरो उससे शादी कर लेता है और दोनों चैन से रहने लगते हैं—इस विलेन का रोल करने पर भी वह तैयार थे—इस खयाल ही से खून कनपटियों की तरफ़ खिचने लगा और वह टांग पर टांग चढ़ाकर बैठ गये।

भोलानाथ की एक टांग ज्यादातर दूसरी टांग पर चढ़ी रहा करती थी और इसीलिए वह समझते थे कि रमा को देखनेवाले भी टांग पर टांग चढ़ा लेते हैं और यह ख्याल उनसे झेला न जाता। मियां-बीवी में झगड़े होते। रमा आत्महत्या की धमकी देती, पर आत्महत्या करने की जगह वह रक्षाबन्धन के दिन उस आदमी को राखी बांध देती और खटक जी इतमीनान की सांस लेते। यहां तक कि वह फिर रमा को किसी के साथ मुस्कुराकर बातें करते देख लेते। देख लेते और महाभारत शुरू हो जाती।

रमा बड़ी सीधी-सादी थी। उसे तो अभी तक यही पता नहीं चला था कि सरला हर वक़्त उससे चिमटी क्यों पड़ती है। कभी-कभी तो उसे बुरा भी लगता, पर वह यह सोचकर टाल जाती कि सरला से बहुत-सारे काम निकलते रहते हैं। पैसों से अलग सबसे बड़ा फायदा तो यही था कि सरला के साथ वह ऐसे घरों में आने-जाने लगी जहां सरला के बिना जाने का वह ख्वाब भी नहीं देख सकती थी।...सरला का चक्कर तो उसे काफी दिनों के बाद मालूम हुआ। और उसे कॉलिज के दिन याद आ गये और उसने डर के मारे सरला से मिलना-जुलना बिल्कुल बन्द कर दिया। और भोलानाथ खटक ने तभी से उसे सरला का ताना देना शुरू कर दिया।

अली अमजद नम्बर दो में था और खटकजी नम्बर एक में।

खैर यह कहना तो ठीक नहीं कि नम्बर एक में भोलानाथ रहते थे। नम्बर एक में वह कम रहते थे और उनका टेलीफोन ज्यादा रहता था। वह तो इस टेलिफोन के खजाने की रखवाली करनेवाले सांप थे। कद और टेलिफोन के सिवा उनमें और कोई बड़ाई नहीं थी। पर इन्हीं दोनों बड़ाइयों के आधार पर वह अपने-आपको 'देवनिवास हाउसिंग सोसायटी लिमिटेड' के तमाम देव-निवासियों से बड़ा समझा करते थे।

एक गजब यह भी हो गया कि उनकी बड़ाई का करेला राजा सतना की दोस्ती की नीम पर भी चढ़ गया था। सोसायटी का कोई आदमी हाथ में गंगाजल या कुर-आन लेकर तो यह कह नहीं सकता था कि वह इस

दोस्ती के बारे में कुछ जानता है। पर भोलानाथ 'खटक' हर दूसरे या तीसरे कोई-न-कोई मौका निकालकर राजा साहब सतना की बात जरूर निकालते—यहां तक कि यह दोस्ती देव-निवासियों को जबानी याद हो गयी थी।

हां, रमा कभी खुलके इस दोस्ती की बात नहीं करती थी। पर कभी-कभार इशारा-सा जरूर कर जाती थी कि जो सतना की राजकुमारी नाथ पर लट्टू न हो गयी होती तो शायद यह दोस्ती कभी खत्म न हुई होती। और यह सुनकर खटकजी घबराने और शरमाने की वह ऐक्टिंग करते कि बड़े-बड़े दिलीप कुमार मात। कहते, "रमा तुमसे कितनी बार कहूँ कि ऐसी बातें न किया करो। लोग सच समझ बैठते हैं।...."

इस तरह की कोई बात भोलानाथ पंजाबी में कभी न कहते, या तो हिन्दी में कहते या अंग्रेजी में कि कोई पूरी बात समझने से रह न जाये। वह लोगों को इस तरकीब से यकीन दिलाना चाहते थे कि राजकुमारी सतना से वह इश्क लड़ा चुके हैं। ऐसे मौकों पर हिन्दी भी वह कम ही बोलते थे। उनका खयाल था कि हिन्दुस्तान के तमाम पढ़े-लिखे लोगों की मातृ-भाषा अंग्रेजी ही है।

इन तमाम तरकीबों के बाद भी सोसायटी में किसी को इस प्रेम-कहानी पर यकीन नहीं था। परन्तु इसी कहानी से भोलानाथ की 'इगो' का खाना-पानी चलता था और टेलिफोन की जरूरत से मजबूर होकर लोगों को यह कहानी बार-बार सुननी पड़ती थी। किस्सा यह भी तो था कि भोलानाथ अपने-आपको हसीनों में गिना करते थे। रमा भी ज्यादातर उनके इस खयाल से सहमत ही रहा करती थी। उसके लिए वारिसशाह की हीर और सरसों के साग के बाद दिल से पेट तक उतर जानेवाली कोई और चीज थी तो खटकजी थे।

भोलानाथ और रमा के सिवा इस परिवार में एक बेटी थी और दो बेटे थे। मीता पिलौंठी की औलाद थी और जलन्धर में ब्याही हुई थी। उसका पति पुरानी कारों का कारोबार करता था, पर भोलानाथ और रमा ने सोसायटीवालों को यकीन दिला रक्खा था कि मिश्रीलाल, यानी मीता का पति, जल्द ही कारों की एक फैक्टरी डालनेवाला है। और उनकी

कम्पनी में वनी हुई कार संजय गांधी की मारुति कार से हजार गुनी अच्छी होगी जभी तो इन्दिरा गांधी रोज कोई-न-कोई अड़चन खड़ी कर देती हैं। मारुति पर इतना ज़ोर इसलिए कि भोलानाथ के ख्याल में इन्दिराविरोध लगभग फैशन है और वह थे आदमी शौकीन। उनमें राज-नीति की समझ बिल्कुल नहीं थी। वह 'टाइम्ज आफ इण्डिया' रोज पढ़ते थे और यदि शाम को कोई फंस जाता तो 'शिवास रीगल' की वोतल से ब्लैक-नाइट' या 'डिप्लोमेट' उंड़ेल-उँड़ेलकर अकेले पीते और सामनेवाले को राजनीति समझा-समझाकर अधमुआ कर देते। वोलते इस यकीन से मानो निक्सन और ब्रेजिनेव के साथ खेले हुए हैं और चु-एन-लाई लंगोटिया यार है। इलसन-विलसन, इगाल-डिगाल, अआदत-सआदत और इटो-टिटो को तो वह किसी खेत की मूली ही नहीं समझते थे। और दिल्ली सरकार की पालिसियों के वारे में तो वह यूं वात करते जैसे श्रीमती गांधी का तो वस नाम हो गया है, सरकार की सारी पालिसियां तो यह वनाते हैं। रमा हाँ में हाँ मिलाती और दोनों वेटे पास वैठे गरदन हिलाते रहते। वस, मीता जरा मुँहफट थी। भोलानाथ की उड़ान से वोर होती तो टोक देती। यही कारण था कि खटकजी, दिल-ही-दिल में, मीता से जला करते थे। यह वात भी खुद रमा ने मिसेज वर्मा को वतायी थी।

वात यह है कि जिस दिन रमा भोलानाथ से रूठती उस दिन वह विल्डिंग की किसी-न-किसी औरत के कान के कीड़े जरूर झाड़ती। और भोलानाथ से वह हर दूसरे-तीसरे खफ़ा होती ही रहती थी।

दर-अस्ल उसे भोलानाथ की जेव से रुपये निकाल लेने का बड़ा शौक़ था। जब मौक़ा मिलता, वह भोलानाथ की जेवों की धूल झाड़ देती। उसने मीता को भी यही सिखाने की कोशिश की, पर वह वड़ी कम-अक़्ल निकली। उसने माँ की वात नहीं मानी, पर रमा अपने काम से लगी रही। ज्यादातर तो भोलानाथ को पता न चलता, क्योंकि रमा वड़ी चालाकी से पच्चीस रुपये हों तो चार रुपये और चालीस रुपये सत्तर पैसे हों तो सात रुपये तीस पैसे निकाल लिया करती थी। भोलानाथ ज़िक्र निकालते तो रमा उनका मजाक उड़ाने लगती कि यह कैसी चोरी है? कोई चुरायेगा तो ज़्यादा रक़म छोड़ क्यों देगा? भोलानाथ जानते थे कि चोरी तो हुई है,

पर रमा की इस बात का उनके पास कोई जवाब नहीं होता था। इसलिए वह खून या व्हिस्की के घूंट पीकर चुप हो जाया करते थे। पर ताक में रहते। रमा को गच्चा देने के लिए वह जेब के पैसे गिनकर डायरी में लिख लेते कि आज जेब में कितने पैसे हैं। और उस दिन रमा की शामत आ जाती। रात-भर रमा और भोलानाथ में गाली-गलौज होती रहती। भोलानाथ अंग्रेजी और हिन्दी में गाली देते, पर रमा को अपनी काबिलियत की धौंस जमाने का कोई खास शौक नहीं था इसलिए वह पंजाबी बोलती रहती। पर जवाब तुर्की-ब-तुर्की देती'''नतीजे में अली अख्तर के छोटे बेटे को बहुत-सी पंजाबी गालियां याद हो गयी थीं और कभी-कभार वह मजे में आकर बाप के गले में बांहें डालकर उसे 'हरामी दा पुत्तर' कहता तो अली अख्तर घबरा जाता और सीमा से कहता कि 'भई, यह क्या हो रहा है? बस्सू को गालियां ही सिखलानी हैं तो क़ायदे की गालियां सिखलाओ। यह हरामी दा पुत्तर तो बहुत ही बेसुरी गाली है,' लेकिन जाहिर है कि अख्तर मियां-बीवी कर ही क्या सकते थे। अख्तर ने एक दिन इशारा करने के लिए भोलानाथ को एक लतीफ़ा सुनाया।

कहते हैं कि फ़िराक़ गोरखपुरी बम्बई आये तो फ़िल्मी धुरन्धरों ने उन्हें एक पार्टी दी। यह अजीब इत्तिफ़ाक़ है कि हिन्दी फ़िल्म के सारे धुरन्धर या तो पंजाबी हैं या बंगाली हैं। बंगालियों को तो फ़िराक़ गोरखपुरी में कोई दिलचस्पी नहीं। तो बड़े पंजाबी स्टार जमा थे। बी. आर. चोपड़ा, दिलीप कुमार, विनोद खन्ना, शम्मी कपूर'''फ़िराक़ साहब अकेले पड़ गये। यह लोग एक-दूसरे से पंजाबी में बात करने लगे और फ़िराक़ साहब आँखें नचा-नचाकर थोड़ी देर तक तो यह सब झेलते रहे, फिर दिलीप कुमार से बोले, "अमें यूसुफ़, सोचता हूँ कि पंजाबी सीख ही डालूं।" तो यूसुफ़ साहब ने बड़ी संजीदगी से कहा, "नहीं फ़िराक़ साहब, आपको पंजाबी सीखने की क्या जरूरत है!" इस पर फ़िराक़ साहब ने कहा, "भई बूढ़ा हुआ, मरने की उम्र आयी। सारी जिन्दगी गुनाहों में गुजरी है। जाहिर है जहन्नुम में जाना पड़ेगा। वहां की आफ़िशियल लैंगुएज सीख लूँ तो काम ही आयेगी।"

यह लतीफ़ा सुनकर भोलानाथ ने दिल खोलकर कहकहा लगाया और

अमजद की डिबिया से सिगरेट निकालकर उसे अपनी दियासलाई से जलाने में मशगूल हो गये। और अमजद अपनी और अपनी सिगरेट की डिबिया की जान बचाकर अपने फ्लैट में भाग आया और हरीश से बोला, "यार, यह खटक तो अजीब चीज़ हैं।"

हरीश ने कहा, "मैं तो कहता हूँ कोई और घर ढूंढो।"

अमजद ने कहा, "कहाँ ढूंढूं? यही फ्लैट मुश्किल से मिला है।"

और यह बात उसने ठीक ही कही थी। यह फ्लैट उसे बड़ी मुश्किल से मिला था। बात यह है कि बम्बई और मकान, यह दो अलग-अलग चीज़ें हैं। यह तो पता नहीं कि बम्बई में ढूंढे से भगवान मिलता है या नहीं, परन्तु मकान हरगिज़ नहीं मिलता। कारण शायद यह है कि फ्लैट दुबाई या अबू दाबी से स्मगल नहीं किये जा सकते। और उलहासनगर में नकली मकान बनानेवाली कोई फ़ैक्ट्री नहीं खुली है। मतलब यह कि अली अख़्तर जैसे मध्यम वर्ग के मुसलमान के लिए बम्बई में घर मिलना अल्लाह ही के मिलने जितना मुश्किल है। भगवान, कम-से-कम, सिन्धी और उत्तरप्रदेशी में तो फ़र्क़ नहीं कर सकता, पर बम्बई के मालिक-मकान यह नाज़ुक फ़र्क़ भी कर लेते हैं। बम्बई के कब्रिस्तान भी मालिक-मकानों से पीछे नहीं हैं। वह भी सुन्नी-शीया, हनफ़ी-वहाबी, शीया-शीया खोजा में फ़र्क़ कर लेते हैं। बम्बई में आसानी से न घर मिलता है, न क़ब्र मिलती है। अली अमजद को क़ब्र का अनुभव तो नहीं था, पर वह बम्बई में घर ढूंढ चुका था।

वैसे तो अली अमजद अच्छा आदमी था, पर मकान के सिलसिले में देखा जाये तो उसमें कई खराबियां थीं। पहली खराबी यह कि वह मुसलमान था। दूसरी खराबी यह कि फ़िल्मों में था। तीसरी खराबी यह कि वह खोजा या कैथलिक या सिन्धी नहीं था। पर उसे घर की ज़रूरत थी। इसलिए उसने तोलाराम दलाल का पिण्ड नहीं छोड़ा।

"आइए अमज़दजी" तोलाराम ने खीसें निकालकर कहा और 'ज' पर बिन्दी लगाना नहीं भूले!

"मैं तो रोज़ ही आता हूँ साहब।" अमजद ने कहा।

तोलाराम हँस पड़ा। बोला, "आप तो डाइलाग मार दिया।" यह

कहकर वह अपनी जाँघें खुजलाने लगा और अपनी टाइपिस्ट को देखने लगा। खुजलाते वक्त वह आम तौर से टाइपिस्ट की तरफ देखने लगता था क्योंकि उसके खयाल में लड़की की तरफ देखने से खुजलाने का मजा बढ़ जाता है। खुजली के दस-बीस हाथ चलाने के बाद बोला, "कल वाइफ बोली, अमजद भाई को वह अपना वाला इसटोरी सुना डालो। साला बहुत फसक्लास सब्जेक्ट है। तीन तो साला रेप सीन ठोक दिया है। पहला सीन रेप साले हीरो की सिस्टर का होता है..."

"पहले घर की बात करो तोलारामजी !"

"अरे, घर तो समझो कि मिल गया अमजद भाई ! तुम साली बिगिनिंग का सीन सुन लो। साम का टाइम है। टाइटिल खतम..."

"फ्लैट है कहाँ ?" उसने सवाल किया।

"एहीं। बेंड्रा में। हीरोइन बिकिनी पहने, सायरा बानो समझो ना। क्या टाँगें हैं साली की।..." वह टाइपिस्ट को देखकर अपनी जाँघ खुजलाने लगा और अली अमजद ने अपना सवाल खोल दिया, "एरिया क्या है उस फ्लैट का ?"

"आठ सौ फीट।"

खुजली खत्म हो गयी तो तोलाराम आगे बढ़ा, "हीरोइन को जो वेटर ने ऐसे देखा तो साले की हेकलाहट और बढ़ गयी। समझो कि वी. गोपाल हुवा वेटर। साले की सकल देखकर हँसी आती है।..."

"डिपॉजिट क्या लेगा ?"

"वही तीन महीने का भाडा। वाइफ बोली कि अमजद भाई को बोलो कि इसटोरी अपना नाम से बेच दें। वह तो साली तुम्हारी फैन हो गयी है। फिफटी-फिफटी कर लेंगे।"

"चलके जरा वह फ्लैट देख लिया जाये।"

"पर लैंड-लार्ड से ये मत बोलना कि तुम फिलिम राइटर हो।" तोलाराम ने उठते हुए कहा, "साला लोग फिलिमवाला को घर नहीं देता। साले लोग बोलते हैं कि फिलिमवाला लोग के रहने से बहू-बेटी लोग का साला इज्जत खतरे में पड़ता है। जैयसे जो बिल्डिग में फिलिम वाला लोग नही रहता ऊ बिल्डिग में बहू [illegible]

पड़ता है ! अरे, साला सब बंकस है अमजद भाई ! ऐयसी बहू-बेटी क
बहुत इशटोरी है मेरे पास। अरे, अखतर भाई, हम तो इ बोलता है कि
अमजद-तोलाराम टीम बनाके सलीम-जावेद की छुट्टी कर दी जाय।"

"अमजद-तोला टीम से कहीं अच्छी तो तोला-माशा टीम होगी।"
अली अमजद ने कहा।

तोलाराम ज़ोर से हँसा। उसकी टाइपिस्ट उसकी तरफ देखक
मुस्कुरा दी। तोलाराम ने उसे आँख मार दी। बोला, "मिस फरनाण्डिस
को तकदीर भी बन जायेगी, हम लोग की टीम बन जाने से। साली रे
सीन को बहुत मजा लेकर टाइप करेगी···"

"आह, यू आर इम्पासिब्लि !" मिस फ़र्नाण्डिस ने हँसकर कहा।

तोलाराम फिर हँसने लगा, "क्या नाम बताया था ? तोलाराम
मासाराम।···"

उसकी हँसी की आवाज़ का सामने पड़ी हुई हिल रोड पर कोई
असर टाइपिस्ट पर नहीं हुआ क्योंकि वह घर जाने की जल्दी में थी।
सामनेवाले बस-स्टाप पर एक मोटी खोजन झुकी हुई अपनी पिण्डली
खुजला रही थी। और उसके पीछे एक नारियलवाला बैठा नारियल की
जटाएँ छील रहा था। एक बड़ी खूबसूरत-सी लड़की, मिनी फ्रॉक पहने,
तोलाराम के ग्राउण्ड फ्लोर वाले आफ़िस के सामने से गुज़र गयी। मोटी
खोजन पिण्डली खुजाते-खुजाते सीधी होकर अपना पेट खुजाने लगी।···

"चलो अमजद भाई।" तोलाराम की आवाज़ आयी और अमजद ने
सड़क से निगाहें हटाकर उसकी तरफ़ देखा।

"चलिए।"

"मिस फरनाण्डिस," तोलाराम ने कहा, "आफिस में ताला मारके
चाबी वाइफ को दे देना। चलो अमजद भाई..."

तोलाराम और अली अमजद सड़क पर आ गये। अमजद साइड कार
में बैठ गया। तोलाराम मोटर साइकिल स्टार्ट करने लगा।

"लैण्डलार्ड कौन है ?"

"सिन्धी।" तोलाराम ने कहा। मोटर साइकिल स्टार्ट हो गयी। और
उसके शोर में उसकी बाक़ी बात गुम हो गयी।

लैण्डलार्ड मोतवानी चिम्बुई की पतली-सी भीड़-भड़क्केवाली गली में रहता था। कुलाबे में उसकी किताबों की दूकान थी और वह केवल अंग्रेजी किताबें बेचता था। अंग्रेजी सिगरेट पीता था। तीन बेटियों का बाप था! पाली हिल की 'सूर्यदर्शन हाउसिंग सुसायटी' में उसके दो फ्लैट थे। वह दोनों फ्लैट किराये पर चल रहे थे और खुद वह किराये के घर में रह रहा था। पाली हिल वाले दोनों फ्लैटों का किराया छब्बीस सौ पचास रुपये आता था और खुद वह अपने बाईस सौ फीट के फ्लैट का सत्तानवे रुपये किराया देता था। यानी दो हज़ार पाँच सौ तिरेपन रुपये महीने की बचत होती थी। असल चीज बचत है। और इसलिए मोतवानी अपने तीसरे फ्लैट के होनेवाले किरायेदार से मुस्कुराकर मिला।

"क्या पीजियेगा?"

"जी, शुक्रिया।" अली अमजद ने कहा।

"किन पेपर्ज में लिखते हैं आप?"

"धरमयुग," तोलाराम बोला, "सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान। आप तो बस लिये जाव मैंगजीनों के नाम। सबमें लिखते हैं।"

"अच्छा-अच्छा," मोतवानी ने कहा, "तोलाराम ने आपको जर्नलिस्ट बताया था..."

"जी नहीं," अली अमजद ने बात काटी, "मैं जर्नलिस्ट नहीं, पत्रकार हूँ!"

इस बीच में तोलाराम ने हाथ बढ़ाकर मोतवानी के सामने से 'इनहिल' सिगरेट की डिबिया उठा ली। बोला, "तुम कुछ कहो अमजद भाई, पर ब्रिटिश सिगरेटों का जवाब नहीं है।"

"मेरे नाम में ज के नीचे बिन्दी नहीं है।"

तोलाराम हँस दिया। "आप भी लो।" उसने डिबिया अली अमजद की तरफ़ बढ़ायी।

"ना भाई। मैं अपनी सिग्रेट पियूँगा।" अली अमजद ने चारमीनार की डिबिया निकाली।

"आपका नाम मैंने किसी फिल्म मैगज़ीन में भी देखा था शायद। मोतवानी बोला।

"अरे तो इसमें इनका क्या दोस ?" तोलाराम ने मोतवानी को दौड़ा
लया। वह जानता था कि जो फिल्म की बात आगे बढ़ी तो उसका दो
तिशत कमीशन ख़तरे में पड़ जायेगा। और उसे यह भी मालूम था कि
कताबों का कारोबार करने के बावजूद मोतवानी पढ़ा-लिखा आदमी नहीं
ा। इसलिए उसने एक टुकड़ा भी लगा दिया, "हो सकता है कि भाबीजी
ा नाम पढ़ने में गलती हो गयी हो।"

"कम्पनी लीज़ पर दे सकता हूँ।" मोतवानी ने कहा।

"मैं फ्री-लान्सर हूँ!" अली अमजद ने कहा।

"नहीं साब," मोतवानी ने गरदन हिलायी, "एक बार लीव-ऐंड-
ाइसेंस में फँस चुका हूँ।" फिर उसने तोलाराम की तरफ़ देखना शुरू
कया, "तुम्हीं तो बोला था कि फिलिमवालों और मुसलमानों के साथ
न्धा नहीं करना चाहिए।"

अली अमजद के बदन का सारा खून खिंचकर उसके चेहरे पर आ
या।

"पर वह किरायादार तो पंजाबी हिन्दू था।" तोलाराम ने मोतवानी
को दिल-ही-दिल में माँ-बहन की गाली देते हुए कहा, "यह तो नेसलिस्ट
ुसलमान है।"

"बात यह है भाई साब," मोतवानी ने अली अमजद से कहा,
'सुसायटी की तरफ़ से किसी नान-सिन्धी को फलाट देने की परमिशन नहीं
है।" मोतवानी ने सूखे मुँह से कहा।

मैं मुसलमान भी हूँ मोतवानी साहब, और फिल्मों में भी काम करता
हूँ।" अमजद ने कहा। उसने यह कहना ज़रूरी जाना। वह कोई मजहबी
आदमी नहीं था। अल्लाह को बाक़ायदा नहीं मानता था। नमाज नहीं
ढ़ता था। रोज़े नहीं रखता था। मुसलिम लीग और जमाअते-इसलामी
ैसी संस्थाओं का कट्टर विरोधी था।...पर इस बात पर शर्मिन्दा भी नहीं
ा कि उसने एक मुसलमान घराने में जन्म लिया है। वह अपने हिन्दुस्तान
ें अपना नाम छिपाकर अपनी और अपने हिन्दुस्तान की तौहीन नहीं
करना चाहता था।

तोलाराम ने रास्ते में कहा था कि फ्लैट किसी और नाम पर लेंगे।

पर जिन्दगी तोलाराम के दो प्रतिशत कमीशन से कहीं ज्यादा क़ीमती चीज़ है। आदर्श नाम बदलकर नहीं जिया करता।···

अली अमजद ने तोलाराम की तरफ़ देखा। तोलाराम सामनेवाली दीवार पर टँगे हुए कैलेंडर की तरफ़ देख रहा था। कैलेंडर था किसी दन्त-मंजन का और कैलेंडर पर सायरा बानो की एक तस्वीर थी। तस्वीर, जिसमें कपड़ा कम था और बदन ज्यादा।···तोलाराम तस्वीर के बाक़ी कपड़े उतारने की कोशिश कर रहा था और धीरे-धीरे अपनी जाँघ खुजलाने में लगा हुआ था। अमजद को अपनी तरफ़ देखता पाकर उसने उसकी तरफ़ झुककर धीरे से पूछा, "अमजद भाई, ये साली दाँत में टूथ-ब्रश करती है क्या ?"·· फिर वह खुद ही हँसने भी लगा।

मोतवानी होंठों पर बड़ी नेशनल-इंटिगरेशन-छाप मुस्कुराहट चिपकाये इस इन्तज़ार में बैठे थे कि अमजद उनकी तरफ़ देखे तो वह अपनी बात कहें। जब उसने उनकी तरफ़ देखा तो वह बोले, "आपके धर्म से मुझे क्या लेना-देना अमजदजी, पर सुसायटी के आर्डर से मजबूर हूँ।" मोतवानी ने ज पर बिन्दी मार दी, "जो आप सिन्धी होते तो यह फ्लैट आप ही को देता।"

"पर मैं सिन्धी होता क्यों ?" अमजद ने पूछा।

मोतवानी साहब हँसने लगे मानो अमजद ने मज़ाक किया हो।

"मोतवानी साहब," अमजद ने कहा, "मुझे फ्लैट की सख़्त ज़रूरत है। आप कहते हिन्दू हो जाओ तो मैं हिन्दू हो गया होता पर सिन्धी हो जाना मेरे बस की बात नहीं है।" अपने मुँह की कड़वाहट से अली अमजद का दम घुटने लगा। वह खड़ा हो गया, "चलिए तोलारामजी···"

और तोलाराम के चलने का इन्तज़ार किये बिना वह बाहर चला गया।

भिण्डी की गली में रात टहल रही थी। समुद्र की तरफ़ से आनेवाली हवा ठण्डी थी। बनिये की दुकान पर मिट्टी का तेल लेनेवालों की भीड़ थी। सामनेवाली दीवार पर मनोज कुमार की फ़िल्म 'शोर' का पोस्टर लगा हुआ था। और उस पोस्टर से सटा हुआ श्रीमती इन्दिरा गांधी की तस्वी वाला बड़ा पोस्टर था। इन्दिराजी मुस्कुरा रही थीं और बम्बई कांग्रे

कमेटी जनता को चौपाटी आकर प्रधान मन्त्री का भाषण सुनने की दावत दे रही थी।

इन्दिराजी के मोतियों की तरह चमकते हुए दांत देखकर अली अमजद को मोतवानी की दीवार पर टँगा हुआ दन्त-मंजनवाला कैलेंडर याद आ गया जिसमें दांतों की जगह टांगों पर जोर था।

"तुम फिकर तो करो मत अमजद भाई," तोलाराम आ गया, "तोलाराम की जिन्दगी में तुम बे-घर नहीं रह सकते। वाइफ आज ही बोली थी कि अमज़द भाई साब के साथ टीम बनानी है तो पहले घर दिलवाव उनको। अरे तुम देखना अमज़द भाई, अब हम तुमको कोई सिन्धी ही का पलैट दिलवायेंगे।"

तोलाराम ने अपना वादा पूरा किया।

यह फ्लैट भी एक सिन्धी ही का था, छत्तराम मनचन्दानी।

अली अमजद ने उन्हें पहली ही मुलाक़ात में बता दिया कि वह मुसलमान भी है और फिल्म-लेखक भी। पता नहीं यह सुनने के बाद मनचन्दानी उसे फ्लैट देता कि नहीं पर श्रीमती साधना मनचन्दानी ने बीच ही में बात लोक ली, "भाई साब, आप मुझे राजेश खन्ना और धर्मेन्द्र से मिला देंगे?"

"क्यों नहीं? ज़रूर।" उसने कहा।

"क्या धर्मेन्द्र और सायरा बानो का वाक़ई कोई चक्कर चल रहा है?" साधना मनचन्दानी ने पूछा और अली अमजद साधना के 'वाक़ई' के क की बिन्दी पर हैरान रह गया। पता चला कि वह ख्वाजा अहमद अब्बास की हीरोइन रह चुकी है और उन्होंने उसका शीन-क़ाफ़ ठीक करवाने में पूरा एक साल लगाया था। बाद में वह फिल्म बनी तो पर रीलिज न हो सकी क्योंकि उसमें न कोई रेप-सीन था न हीरो और शेट्टी की कोई लड़ाई ही थी···पद्मा खन्ना का कोई कैब्रे-आइटम तक नहीं था। ···पर साधना अपनी गिनती हीरोइनों में करती थी और फिल्मों के बारे में यूं बात करती थी जैसे फिल्मों में यह उसकी तीसरी पीढ़ी है। जब कोई फिल्मी स्कैंडल सुनती तो एक लम्बी सांस लेती कि जो उसकी फिलम रिलीज़ हो गयी होती तो अब तक उसके बारे में भी न जाने कितने स्कैंडल्ज़

बन चुके होंते। पंचारण मिश्र उसके पी. आर. ओ. रह चुके थे। उन्होंने कहा कि यदि वह स्टार बनना चाहती है तो नम्बर एक यह कि अपनी शादी की खबर छिपाये और नम्बर दो कि किसी मशहूर हीरो के साथ और कुछ न कर सके तो बदनाम तो हो ही जाये। धर्मेन्द्र और राजेश खन्ना दोनों ही बहुत बिज़ी थे, इसलिए पंचारण मिश्र के खयाल में इन दोनों में से किसी के साथ बदनाम होने में कोई मज़ा नहीं था। उन्होंने चिंटू कपूर को चुना पर मनचन्दानी तैयार न हुआ और यूँ साधना स्टार बनते-बनते रह गयी। उसी दिन से मनचन्दानी की तरफ से उसके दिल में बाल भी पड़ गया। एक तरह से मनचन्दानी के साथ ब्याह करके वह पछता रही थी। वह कंस्ट्रक्शन के काम में था और फिल्मवालों से उसका कोई तअल्लुक ही नहीं था। इसलिए शादी के ठीक साढ़े चार साल बाद जब अली अमजद के रूप में उसे पहला फिल्मी आदमी मिला तो उसके पुराने घाव हरे हो गये। और वह अली अमजद से यूँ बातें करने लगी जैसे वह उनके पीहर का हो। क्या राजकुमार वाकई गंजा है। क्या देव साब फेस लिफ्ट करवाते हैं? क्या कमाल अमरोही ने सचमुच तीसरी शादी कर ली है? क्या रेखा देखने में बत्तीस-तैंतीस की नहीं लगती? शर्मिला और नवाब-पटौदी की शादी कितने दिन चलेगी? क्या गुलज़ार मीना कुमारी को भूलने के लिए राखी पर आशिक होने की सोच रहा है?... सवाल, सवाल और सवाल।

मनचन्दानी को यकीन हो गया कि देव-निवासवाला फ्लैट अली अमजद को देना ही पड़ेगा। तो उसने चुपके से पचास रुपया किराया बढ़ा दिया और तोलाराम ने इस पर कोई एतराज़ न किया क्योंकि किराया बढ़ने से उसका कमीशन भी बढ़ रहा था।

"पर एक बात का ख्याल रखियेगा।" बातें तय हो जाने के बाद मनचन्दानी ने कहा, "नम्बर एक में भोलानाथ खटक रहते हैं, मिलने लायक नहीं हैं।"

"नम्बर एक में रहते हैं तो साहब-सलामत रखनी ही पड़ेगी।" अली अमजद ने कहा।

"रमा से बचियेगा।" साधना ने कहा, "बड़ी शि

"रमा यानी मिसेज़ भोलानाथ।" मनचन्दानी ने कहा, "मैंने तो राखी बँधवाकर जान बचायी।" मनचन्दानी हँसने लगा। मिसेज़ मनचन्दानी हँसने लगीं। तोलाराम दलाल हँसने लगा। अली अमजद नहीं हँसा क्योंकि उसकी समझ में नहीं आया कि इसमें हँसने की क्या बात है।

"पर राजेश खन्ना से मिलाना मत भूल जाइयेगा।" मिसेज़ ने उसे फिर याद दिलायी।

और जब अली अमजद ने वादा कर लिया तब उसे नम्बर दो 'सुर सिंगार सुसायटी' की कुंजी मिली और उसे यक़ीन आया कि फ्लैट उसे वाक़ई मिल गया है। कुंजी उसने झट-से जेब में रख ली पर उसे जेब के अन्दर भी पकड़े रहा जैसे कि उसे यह डर हो कि छूटते ही कुंजी हवा हो जायेगी।

जब वह मचन्दानी के बारहवें माले फ्लैट से नीचे आया तो तोलाराम ने कहा, "अब किसी दिन बैठके वह इस्टोरी भी सुन लो अमजद भाई।"

"क्यों नहीं? ज़रूर।" उसने कहा।

"फिफ्टी रुपीज की पुरानी इंग्लिस नाविलें भी खरीद लिया हूँ।" तोलाराम ने बड़ी राज़दारी से कहा, "काम चल निकला, भगवान की दया से, तो रोज-रोज नयी इस्टोरियाँ कैसे बनेंगी? यह तरकीब वाइफ ने सुझायी। बहुत वण्डरफुल औरत है। फसक्लास बी. ए. है। एक नया नाविल खरीदने लगा तो दुकानदार बोला, उसे भी मैंने ही फ्लैट दिलवाया था, कि तोलारामजी, फिल्मी रैटर बनना है तो यह नाविल मत लो। दस कापियाँ आयी थीं। दस रैटर ले गये। दस कापियों का आर्डर बुक है—फिर उसने ही मेरे लिए किताबें चुनीं। पचीस बरस से कम पुरानी कोई नाविल उसने खरीदने ही नहीं दी। आज के चालू फिल्मी रैटरों को खबर भी नहीं होयेगी उन किताबों की। कल रात वाइफ ने एक नाविल सुनाना शुरू किया। पहला ही सीन साला ऐसा धांसू है कि छुट्टी हो गयी। होटल पुलिस आफिसर है और हीरोइन उस कातिल की बेटी है जिसे हीरो गिरिफतार करना चाहता है।..."

"बैठते हैं किसी दिन।" अली अमजद ने बात काटी।

"चलो तुमको वहाँ तक छोड़ आऊँ।"

"अरे नहीं।" अली अमजद ने जल्दी से इन्कार कर दिया। उसे डर था कि जो तोलाराम साथ लग लिया तो पूरा उपन्यास सुना डालेगा।

"अरे तकल्लुफ क्यों करते हो अमजद भाई ?" उन्होंने फिर अमजद की ज पर बिन्दी ठोक दी।

"नहीं भाई।" अली अमजद ने कहा, "मैं चला जाऊँगा। सुसायटी के सेक्रेट्री के नाम मनचन्दानी साहब ने खत तो दे ही दिया है।"

"ज्यादा सूटिंग-ऊटिंग मत दिखाना।" तोलाराम ने कहा। और यह कहकर वह अजीब तरह से हँसा। बोला, "मनचन्दानी तो दिन-रात पैसे बनाने में जुटा रहता है और बिचारी साधना भावी सूटिंग पर गुजारा कर रही है।"

तोलाराम ज़ोर से हँसा।

उसकी हँसी की आवाज़ उसकी मोटर-साइकिल की आवाज़ में डिज़ाल्व हो गयी।

"फिर मिलते हैं।" अली अमजद ने चिल्लाकर कहा।

तोलाराम चला गया और अली अमजद पाली हिल्ज़ अपार्टमेंट के नीचे फैले हुए देशी और विदेशी कारों के जंगल में अकेला रह गया।

"सुर सिंगार सुसायटी" तक अली अमजद की किरायादारी की खबर अली अमजद से पहले ही पहुँच गयी। और सुसायटी में उसकी पहली मुलाकात रमा से हुई। वही इन्तिज़ार में थी। वह इस बात पर मनचन्दानी से खफा भी थी कि उसने अपना फ्लैट एक मुसलमान को क्यों दिया। पर वह चान्स लेनेवालियों में नहीं थी, इसलिए उसने दिन-भर में यह मालूम कर लिया कि आज तक उसकी कितनी फिल्में रिलीज़ हो चुकी हैं और वह कितनी फिल्में लिख रहा है।—खटक परिवार पढ़ा-लिखा परिवार था और पढ़े-लिखे लोग अपनी नफरतें छिपाना जानते हैं।

रमा के खयाल में उसे मुसलमानों से नफरत करने का पूरा अधिकार था। उसे यह अधिकार इसलिए था कि उसके घरवालों को सन सैंतालिस की उथल-पथल में पंजाब छोड़ना पड़ा था। वह लोग पंजाबी किसानों को भारी सूद पर रुपया क़र्ज़ दिया करते थे। जब पाकिस्तान की हवा चली तो गिरवी रक्खे हुए सोने-चाँदी के तमाम-तमाम गहने लेकर, दंगे शुरू होने

से पहले ही, दिल्ली आ गये। रमा का कहना था कि उसके दादाजी के पास मनों सोना रहा होगा। जो देश का बँटवारा न हो गया होता तो रमा के दादाजी यह मनों सोना-चांदी लेकर दिल्ली न आ गये होते। देश के बँटवारे से सब घाटे में रहे, पर रमा के दादाजी की लह आयी। दिल्ली आकर उन्होंने अपना क्लेम दाखिल किया और अब्दुस्समद खां बिसाती की कोठी में जमके बैठ भी गये। और बाक़ी ज़िन्दगी उन्होंने भगवान की पूजा करने और मुसलमानों को गालियां देने में गुजार दी।

सैंतालिस में रमा साढ़े बारह बरस की थी। साढ़े बारह बरस की लड़की नफ़रत और मुहब्बत करना सीख चुकी होती है। उसने मुहब्बत तो खैर किसी से नहीं की, पर दिल्ली आने के बाद उसने मुसलमानों से नफ़रत करना ज़रूर शुरू कर दिया था। मुसलमानों से नफ़रत करना उन दिनों उत्तर भारत के फ़ैशन में भी दाखिल था। लोगों को पाकिस्तान में मारे जानेवालों का हिसाब ज़बानी याद था और लोग उस हिसाब में इस क़दर उलझे हुए थे कि हिन्दुस्तानी सड़कों पर बिखरी हुई लाशों को गिनने का वक़्त ही निकल पा रहा था। आम तौर से लोगों का खयाल यह था कि इज़्ज़त सिर्फ़ हिन्दू औरतों की होती है और मुसलमान औरतों के पास केवल बदन होता है। पर उन दिनों भी इधर और उधर, दोनों ही तरफ़, कुछ पागल ऐसे भी थे जो चिल्ला-चिल्लाकर यह कह रहे थे कि लाशों और खंजरों का कोई धर्म नहीं होता और इज़्ज़त की कोई जात नहीं होती। पर इन पागलों में से कोई रमा का पड़ोसी नहीं था। इसलिए किसी ने रमा को यह बताया ही नहीं कि पाकिस्तान के हिन्दुओं की तरह हिन्दुस्तान के मुसलमान भी मारे जा रहे हैं। यदि यह सच था कि :

> आस कच्चे घड़े की तरह बह गयी
> सोहनी बीच तूफ़ान में रह गयी

तो यह भी सच था कि :

> जामा-मस्जिद में अल्लाह की ज़ात थी
> चांदनी चौक में रात-ही-रात थी।

पर पूरी वास्तविकता यूं थी कि :

> पांच दरियावों का गीत जलने लगा

कृष्ण के देश में कोई राधा न थी
राम के देश में कोई सीता न थी
हीर सड़कों पे नंगी फिरायी गयी
रावी में हर रवायत बहायी गयी
कुछ लुटेरे बड़े आदमी बन गये
और हम घर में शरणार्थी बन गये।
औरतें सरहदों की तरफ चल पड़ीं
नाक की कील, सर की रिदा भी नहीं
जूतियाँ घर की दहलीज पर रह गयीं
एक कारे-नुमायाँ हुआ है यहाँ
घर जलाकर चिरागाँ हुआ है यहाँ।

परन्तु यह पूरी वास्तविकता उन दिनों बहुत कम लोगों को मालूम थी। और रमा उन कम लोगों में से नहीं थी। इसलिए जब उसे यह पता चला कि बगलवाले फ्लैट में कोई मुसलमान आ रहा है तो वह समझ गयी कि यह भावना उसका दिल दुखा रही है। पर मध्यम वर्ग की थोड़ी-बहुत पढ़ी-लिखी औरतों की तरह रमा को भी फिल्में देखने, कभी-कभार अंग्रेजी में बात करने और दैनिक समाचारपत्र पढ़ने का बड़ा शौक था। दिल-ही-दिल में वह राजेश से भी मिलना चाहती थी और अली अमजद से दोस्ती करने के बाद उसकी तमाम फिल्मी ख्वाहिशें पूरी कर सकती थी।

रमा कहती तो यह थी कि भोलानाथ की तस्वीर देखते ही वह तड़ से उन पर आशिक हो गयी थी, पर सच्ची बात यह है कि भोलानाथ के बम्बई में रहने पर आशिक हुई थी। मतलब यह था कि मिसेज भोला-नाथ चोपड़ा बनकर उसे बम्बई रहने और अपने दिलीप कुमारों, धर्मेन्द्रों और राजेशों से मिलने का मौका मिलेगा। राजेश खन्ना का पूरा नाम वह कभी नहीं लेती थी। राजेश खन्ना उनके लिए रजेश था। और जो इन लोगों से मिलना न हो भी सका तो उस शहर की हवा में साँस लेने का मौका तो मिल ही जायेगा जिसमें यह स्टार साँस लेते हैं और इश्क करते हैं और बाढ़-पीड़ित जनता के लिए मदद माँगने के लिए जुलूस निकालते हैं।

पर जब बम्बई आकर उसे पता चला कि वह जिसे दिलीप कुमार समझ रही थी, वह तो वास्तव में यूसुफ खाँ है तो उसने अपनी दर्शन-लिस्ट से उसका नाम काट दिया। तो बचे राजेश और धरम। और अली अमजद इन दोनों ही की फिल्में लिख रहा था। इसीलिए अपनी नफरत की आँखें बचाकर वह अली अमजद के आने की राह भी देख रही थी। बाहर जरा आहट होती तो रमा भागकर दरवाजे की आँख से अपनी आँख लगा लेती।···और यूँ 'सुरसिंगार' में सबसे पहले अली अमजद को रमा ही ने देखा।

अली अमजद पहली ही बार 'सुरसिंगार' नम्बर दो का ताला खोल रहा था कि उसे लगा जैसे कोई उसे देख रहा है। उसने ज्यादा ध्यान नहीं दिया। पर जब रमा बाहर निकल आयी तो उसकी तरफ देखना ही पड़ा।

रमा निकली तो यूँ थी कि जैसे वह किसी ज़रूरी काम से, बहुत जल्दी में, बाहर जा रही है और नये पड़ोसी को देखकर यूँ ही पलभर को रुक गयी है।

"नमस्तेजी।" अली अमजद के सलाम के जवाब में उसने मुस्कुराकर कहा। उसे दरअस्ल अपनी मुस्कुराहट पर बड़ा गुमान था, "आप अली अमजदजी हैं ना ?"

"जी हाँ।" उसे मजबूरन रुकना पड़ा, हालाँकि वह दरवाज़ा खोल चुका था।

"कितना रेंट दे रहे हैं आप ?"

"साढ़े छः सौ।"

"हे राम ! इन सिन्धियों से भगवान बचाये। आप तो स्टैंडर्ड रेंट करवा लीजिए। मैं मिसेज रमा चोपड़ा हूँ। और देखिए भाई साहब, अब यहाँ रहने आ रहे हैं, तो मिसेज गुप्ता से बचियेगा। मौका मिलते ही बीस-तीस उधार माँग लेगी और आँख झपकते ही घर की एक-आध चीज साफ कर देगी। बड़ी हाथलपक है जी।···" रमा जोश में यह भूल गयी कि वह यह दिखाती हुई निकली थी कि बहुत जल्दी में है। वह 'सुर-सिंगार' पर रनिंग कमेंट्री देने लगी—"यह जो नम्बर चार की फ्रेनी है, मिलने लायक नहीं है। मैं अपने मुँह से कुछ नहीं कहती। आप खुद देख

ही लेंगे…"

मानी यह हुआ कि 'गुरुनिगार' में झोपड़ाओं के सिवा कोई मिलने-मिलाने के लायक है ही नहीं।

"भाभीजी कब आयेंगी ?"

"परसों।" उसने अपनी भाभी के आने की खबर दे दी जो बनारस खास शूटिंग देखने और दिलीप कुमार से मिलने बम्बई आ रही थीं!

"फिर हम और भाभीजी रोज मैटनी शो देखने जाया करेंगी।" रमा खिलखिलाकर हँस पड़ी और फिर बोली, "नाथ को तो कोई शौक ही नहीं है। बस, काम पर से आये नहीं कि व्हिस्की लेकर बैठ गये। पर दिल के बड़े अच्छे हैं।"

अली अमजद ने दरवाजा पूरा खोल दिया। पर रमा ने इशारा नहीं समझा। वह तो अपने मजे में बोलती ही चली गयी, "बस उनके फोन को कोई हाथ न लगाये। बात यह है भाई-साब, कि बिल्डिंग में फोन बस एक है। हमारे पास। अब जो हम लोग बिल्डिंगवालों को मैसेज भिजवाने लग जायें तो और किसी काम के लिए टाइम ही न मिले। छः नम्बर में जो मिसेज चिन्तक रहती हैं, उनसे पहले मेरी बड़ी दोस्ती थी। मिस्टर चिन्तक किसी डेली पेपर में काम करते हैं। तो मिसेज चिन्तक गयीं मायके। भाई-साब, चार महीने तक मैंने चिन्तकजी को अपने घर खाना खिलाया। कपड़े उनके धुलते और धोबी का हिसाब मैं रखती। मैं हिसाब नहीं करती भाई साब, पर एक आदमी को चार महीने तक खिलाने में कुछ तो खर्च होता ही होगा। एक दिन उनका फोन आया। मैं नहा रही थी। नौकर बाजार गया हुआ था। नाथ शेव कर रहे थे। तो उन्होंने कह दिया कि अभी मैसेज ले जानेवाला कोई नहीं है। बस भाई साहब, मैं क्या बताऊँ कि पीहर से लौटकर मिसेज चिन्तक ने इस बात का क्या बतंगड़ बनाया है। नाथ भी जबान के जरा तेज हैं। उखड़ गये। बोले: 'निकलती है मेरे घर से कि जूते मारके निकालूँ!' फ्लैट से तो वह डरकर भाग गयी, पर बाहर जाके मेरी मीता के बारे में बक-बक करने लगी कि वह, भगवान न करे, किसी मुसलमान छोकरे से फँसी हुई है। आप बुरा न मानियेगा भाई-साब, पर मुसलमान न मुझे अच्छे लगें न मेरी मीता को…यह

लीजिए। मैं भी पागल हूँ। आप ही से कह रही हूँ कि मुझे मुसलमान अच्छे नहीं लगते…"

अली अमजद बड़ी मुश्किल से जान बचाकर फ्लैट में जा सका। और उसके जाने के बाद रमा भी अपने फ्लैट में चली गयी। सिटिंग रूम में रक्खे टेलीफोन में ताला लगा हुआ था। अपने ख़याल में इस ताले की कुंजी सिर्फ भोलानाथ के पास थी। वह इसलिए कि रमा को फ़ोन पर बातें करने का बड़ा शौक था और उसके शौक़ का बिल भोलानाथ को भरना पड़ता था। पर रमा भी चंट थी। उसने वैसा ही एक ताला और खरीद लिया। एक कुंजी तो उसने अपने पास रक्खी और दूसरी कुंजी के साथ वह ताला उसने मिसेज मिड्डा के हाथ बेच दिया। मिसेज मिड्डा को अपने बेडरूम के लिए नया-नया फ़ोन मिला था। रमा ने उसे डराया कि पास-पड़ोसवाले फ़ोन कर-करके फ़ोन के खर्च को रसोई के खर्च जितना कर देंगे। इसलिए फ़ोन में ताला जरूरी है। उस वक़्त सरला रमा ही के घर थी। सरला मिड्डा हौल खा गयी और बोली कि घर जाते-जाते वह ताला ख़रीदती जायेगी। इस रमा ने वह एक कुंजीवाला ताला उसके सिर मढ़ दिया। दूसरी कुंजी की जगह सरला के हाथ में कैश-मिमो थमा दिया। सरला ने दूसरी कुंजी के बारे में पूछा तो रमा ने कह दिया कि फ़ोन के ताले एक ही कुंजीवाले बनते हैं। और यूं उन्हें, बिना जेब से कुछ सरकाये हुए फोन के ताले की एक कुंजी मिल गयी और भोलानाथ की ज़िद में उन्होंने दिल्ली फोन घुमा-घुमाकर मीता से खूब बातें करनी शुरू कर दी कि अब मीता अपने पति समेत दिल्ली ही में आ गयी थी। और जब टेलिफोन का लम्बा-चौड़ा बिल आता तो भोलानाथ ज़मीन-आसमान एक करते, खूब-खूब चीखते-चिल्लाते और वह मजे में बैठी सेब या चकोतरे खाती रहती। इस पर भोलानाथ और झल्लाते और तब खाना खत्म करके रमा पंजे झाड़कर उनके पीछे पड़ जाती कि फोन में ताला बन्द रहता है…और भोलानाथ यह सुनकर ला-जवाब हो जाते…

…तो अली अमजद से मिलकर, फ्लैट में लौटते ही, पहले तो श्री कृष्ण की मूर्ति को प्रणाम किया, फिर उसके नीचे से फोन की कुंजी निकालकर सरला को फोन करने के लिए उसने ताला खोला। यह कुंजी

वह मूर्ति के नीचे यूं रक्खा करती थी कि भोलानाथ नास्तिक थे और मूर्ति के आस-पास उनका आना-जाना नहीं था। वह तो शौक भी रखते थे और रमा ने, उन्हें बताये बिना उनसे बरतन अलग कर रक्खे थे। भोलानाथ की जेब से मारे हुए पैसे भी वह इसी मूर्ति के नीचे रक्खा करती थी। और इन रुपयों की चोरी के इल्जाम में, हर दूसरे-तीसरे, उनके नौकर निकाले जाते रहा करते थे।···

···तो मूर्ति के नीचे से कुंजी निकालकर रमा ने मिसेज मिर्ज़ा को फोन किया। बोली, "सरला, ए बड़े मजे दी गल सुनो जी···" उन्होंने अली अमजद से अपनी मुलाकात की पूरी कहानी सुना दी। सरला ने यह बात बार-बार पूछी कि क्या उसने सचमुच अली अमजद से यह कह दिया कि उसे मुसलमानों से मिलना-जुलना पसन्द नहीं है? और रमा ने हर बार यही जवाब दिया कि क्या वह अली अमजद से डरती है कि न कहती!

सरला मिर्ज़ा उन औरतों में से थी जो किसी मुसलमान लड़की से इश्क करने पर भी तैयार नहीं थी। मुसलमान तो दूर रहे, वह मिर्ज़ा साहब का छुआ भी नहीं खाती थी। उसका खाना अलग पकता था।···तो उसे डर था कि अली अमजद से रमा की मुलाकात हो गयी तो उसके लिए परेशानी हो जायेगी कि फिर अली अमजद मियाँ-बीवी का रमा के यहाँ आना-जाना शुरू हो जायेगा। और हालांकि रमा ने अब तक उसके इशारे की जबान का कोई जवाब नहीं दिया था, पर सरला अभी तक पूरी तरह उससे मायूस नहीं हुई थी।···सरला की ट्रेजिडी यह थी कि वह कलाकार थी और समाचारपत्रों की सतह पर आकर दिन की बात को खबर की तरह सुना देने के खिलाफ थी। उसे पाने से ज्यादा पाने की कोशिश में मजा आया करता था। इसलिए वह रमा को मुसलमानों से अलग-अलग रखना चाहती थी, और रमा की ट्रेजिडी यह थी कि वह शौकीन-मिजाज थी और भोलानाथ की आमदनी रमा के शौक से बहुत छोटी पड़ जाया करती थी। इसलिए रमा भी सरला को हाथ से निकलने नहीं देती थी कि रमा के सेनिमा के शौक का सारा खर्च सरला ही उठाती थी और सालगिरह के दिन वह रमा को एक नयी और कीमती साड़ी पहनाकर

सबके सामने लिपटाकर उसका मुँह चूमा करती थी।...

यानी रमा और सरला दोनों ही को एक-दूसरे की ज़रूरत थी।

पर रमा सरला से थोड़ा-बहुत जलती भी थी और उसका जलना बहुत अजीब भी नहीं था। सरला के पास दौलत थी और शौक़ न था। रमा के पास शौक़ थे और दौलत न थी। उसे अपना कोई छोटा-सा शौक़ पूरा करने के लिए भोलानाथ की जेब काटनी पड़ती और फिर किसी ईमानदार नौकर को चोरी के इल्जाम में निकालना पड़ता था।

पर रमा अपनी नफ़रत और जलन को छिपाने की कला ख़ूब जानती थी। यही कारण है कि सीमा से दोस्ती करने में उसे देर नहीं लगी। सीमा के आने के बाद दो-एक दिन तक तो अपने बनावटी 'हलो-जी' और एक मुस्कुराहट का चारा डालती रही, क्योंकि वह चाहती यह थी कि पहल सीमा की तरफ से हो ताकि वह लोगों से कह सके कि वह तो सीमा को मुँह लगाना नहीं चाहती, पर कोई सूरत पर सवार ही हो जाये तो क्या किया जाय! मिलना ही पड़ता है...

लेकिन सीमा को अली अमजद ने पहले ही चौकन्ना कर दिया था : "भाभी, मिसेज खटक से बच गयीं तो समझना कि कमाल कर दिया। औरत नहीं जोंक है, जोंक। चिपक गयी तो जान बचाना दूभर हो जायेगा।"

सीमा बनारस के गोविन्दपुरा कलाँ से शूटिंग देखने, शापिंग करने और फिल्म स्टारों के साथ तस्वीरें खिंचवाने आयी थी। उसके पास भला मिसेज खटक के लिए वक़्त ही कहाँ था। उसने तो बम्बई सेंट्रल स्टेशन ही से यह पूछना शुरू कर दिया था कि कौन स्टार कहाँ शूटिंग कर रहा है और किस-किससे उसकी दोस्ती है।

पर रमा भी आसानी से हार माननेवालों में नहीं थी। पहले तो वह इन्तिज़ार करती रही कि सीमा मिलने आयेगी। पर जब सीमा संट खेंच के बैठ गयी तो आजिज़ आकर खटकजी समेत आकर ...ने नम्बर दो 'सर-सिंगार' की घंटी बजा ही दी।

"अपने साब से बोलो कि

"साब तो नहीं हैं।" नौ

"मेम साब को बोलो।"

"मेम साब भी नहीं हैं।"

"उँह। चलो, घर तो देख ही लें।" रमा यह कहकर फ्लैट में चली गयी। भोलानाथ भी पीछे-पीछे आये। नौकर बिचारा रोक तो सकता नहीं था। साथ-साथ लगा रहा। रमा ने पूरा फ्लैट देखा। उसे कुछ जँचा नहीं। सारे फ्लैट में तेज रंगों की कोई चीज ही नहीं थी। बस, गुलदानों में ताजा फूल लगे हुए थे। सिटिंग-रूम की एक दीवार पर पिकासो का एक प्रिंट लगा हुआ था। बैठी हुई नंगी औरत।

रमा ने बहुत आँखें फाड़-फाड़कर नंगी औरत को तलाश किया, पर वह उसे नजर नहीं आयी। बेड-रूम में तो उँतूनी मखमल के पलंगपोश के सिवा किसी चीज पर उसकी निगाह ही नहीं ठहरी···पर उसने यह तय कर लिया कि वह अपने पलंग पर भी मखमल का पलंगपोश डालेगी और गुलदानों से प्लास्टिक के फूल निकाल देगी और दीवार पर एक पेंटिंग लटकायेगी। पेंटिंग तो उसी दिन आ गयी। हाजी अली के सामने रेसकोर्स की तरफ वाटर-कलर और ऑइल के फ्रेम किये हुए लैंड-स्केप बिकते हैं। वह मिसेज सिंहा को लेकर वहाँ गयी। बहाना तो था कि मेट्रो में मैटनी शो देखेंगे। नेशनल स्पोर्ट्स क्लब से गुजरते ही लैंड-स्केप देखकर उसने 'हाय' कहके कार रुकवा ली।

"यह तेरे बेडरूम में बहुत जँचेगी। यह ड्राइंग-रूम में···" उसने सरला सिंहा की तरफ से चित्र पसन्द करना शुरू कर दिया। आखिर में उसने खेतों में चरती हुई एक बूढ़ी गायवाला लैंड-स्केप पसन्द किया, पर यह कहकर छोड़ दिया कि सरला के घर में जगह कहाँ है। तो सरला ने वह लैंड-स्केप रमा के लिए खरीद लिया।

और यूँ भटकजी जब रात को लौटे तो उन्होंने बेडरूम में वह लैंड-स्केप टँगा हुआ देखा। रमा ने तुरन्त एक कहानी सुना दी कि दरवाजे पर एक चित्रकार बेचने आया था। साठ माँग रहा था। मैंने दस में पटा लिया। भोलानाथ इत्तिफाक से खुश थे, इसलिए बात नहीं बढ़ी और रमा ने दस रुपये भी ऐंठ लिये।

दूसरे दिन जब सीमा अपने दरवाजे पर बैठी फूलवाले से फूल खरीद

रही थी, रमा भी निकल आयी।

"नमस्ते ? पैंड़जी···"

"नमस्ते।"

रमा भी फूलवाले की टोकरी के पास बैठ गयी।

"हम लोग कल आये थे।"

"जी हाँ। हम लोग एक फिल्म की महूरत में गये हुए थे।"

"कौन-कौन काम कर रहा है उसमें ?"

"धर्मेन्द्र और हेमामालिनी। ये कार्नेशन कैसे दिये ?" सीमा फूलवाले से बातें करनी लगी, "तुम लूटते बहुत हो···"

"नांइ बाई। हम खाली तुमारे वास्ते इस बिल्डिंग में आता है। तुम ये बोलेगा कि हम लूटता तो कैसे काम चलेगा···?"

"मुझे तो खुद फूलों का शौक़ है। पर इधर फूलवाले आते ही नहीं। यह ट्यूब रोज कैसे दिये ? ···"

रमा को फूल खरीदने पड़े, क्योंकि उसे सीमा पर यह साबित करना था कि उसे भी फूलों का बड़ा शौक़ है। सीमा ने पैंतीस रुपये के फूल लिये। रमा ने पैंतालीस के चुने और यह कहकर अन्दर गयी कि पैसे लेकर आती है। पर वह दरवाज़े पर खड़ी रही और सीमा के अन्दर जाने की राह देखती रही। सीमा पैसे देकर और फूल लेकर अन्दर चली गयी और जब उसके फ्लैट का दरवाजा बन्द हो गया तब रमा निकली और फूलवाले से बोली, "हज़ार का छुट्टा होगा ?" ज़ाहिर है कि फूलवाले के पास हज़ार का छुट्टा नहीं हो सकता था। इसलिए उसने कहा, "बाई, कोई वांदा नहीं, कल ले जाऊँगा पैसे।" परन्तु रमा कहां फँसनेवाली थी। बोली, "मैं उधार नहीं करती···" यह कहकर उसने फ्लैट का दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया।

रमा बहुत खुश थी कि उसने सीमा पर जमा दिया कि बिल्डिंग में एक वही फूल खरीदनेवाली नहीं है। पर उसे यह फ़िक्र फिर भी लगी रही कि सीमा ने कार्डों की बातें नहीं निकालीं···मिलने और दोस्ती करने की बात फिर टल गयी।

उस रात उसने भोलानाथ से कहा, "बहुत प्राउड लगती हैं मिस्टर

अमजद की भाभी।"

सीतानाथ बहुत थके हुए थे, इसलिए बात यहीं खत्म हो गयी।

थोड़े दिन और गुज़र गये। बस, फूलवाले और मच्छीवाले की टोकरी के पास मुलाकातें होती रहीं और टोकरी उठ जाने के बाद खत्म होती रहीं। न सीमा कहीं गयी और न कोई उसके यहाँ आया।

आखिर मिसेज़ गुप्ता से न रहा गया और एक दिन वह घण्टी बजाकर अन्दर आ ही गयी। श्रीकण्ठ गुप्ता नम्बर १० में रहते थे। सुरसिंगार हाउसिंग सुसायटी लिमिटेड के सेक्रेट्री और होम्योपैथी के डाक्टर थे। बांद्रे में रहते थे और बोरिवली में प्रैक्टिस करते थे। लेखक भी थे और श्रीमती गुप्ता के पति भी। यह तीनों ही होल-टाइम काम हैं, पर गुप्ताजी यह तीनों काम यूँ करते थे कि एक काम की खबर बाकी दोनों कामों को कानो-कान नहीं होने देते थे। डाक्टरी ज़्यादा नहीं चलती थी। लेखनी भी ज़्यादा नहीं चलती थी। शौहरी भी ज़्यादा नहीं चलती थी। उनकी गिनती 'कम-से-कम' वालों में थी। 'सुरसिंगार' में वह मिसेज़ गुप्ता के पति के नाते ही जाने जाते थे। किसी से उनका मिलना-जुलना नहीं था। सवेरे ही चले जाते और गयी रात को वापस आते, खाना खाते, सो जाते। सीमा ने 'सुरसिंगार' आने के कोई दो महीने बाद तो उनकी सूरत देखी।

पर मिसेज़ गुप्ता बिलकुल दूसरी तरह की थी। सबके दुख-दर्द में शरीक और सबको अपने दुख-दर्द में शरीक किये हुए। उनका नाम किसी को नहीं मालूम था। वह मिसेज़ गुप्ता कही जाती थीं। बड़े मिसेज़ गुप्ता कहते और छोटे गुप्ता आंटी। उनका कोई-न-कोई नाम ज़रूर रहा होगा। पर अपने नाम का प्रयोग वह पाँच बरस में बस एक बार करती थीं, जब वोट देने जाती थीं।

···मिसेज़ गुप्ता मिलनसार थीं, इसलिए रमा के लगाये हुए 'करफ्यू' को ज़्यादा न झेल पायीं। कुछ अपनी परेशानियों में भी मजबूर हो गयीं। इसलिए रमा की आँख बचाकर वह सीमा के पास आ ही गयीं।

सीमा उस वक्त बच्ची को दूध पिला रही थी और उसका बेटा वसीम कालीन पर अपनी बैट्रीवाली मोटरें दौड़ा रहा था, एक्सिडेंट करवा रहा था। फिर लड़नेवाली कारों के ड्राइवर बनकर लड़ा रहा था, और फिर

पुलिसवाला बनकर चालान कर रहा था या रिश्वत ले रहा था।

मिसेज गुप्ता ने वसीम के सिर पर प्यार से हाथ फेरा। वसीम ने कोई नोटिस न लिया कि उस वक़्त वह पुलिसवाला बनकर रिश्वत पटा रहा था।

"बद-तमीज़।" सीमा ने डाँटा, "आदाब नहीं किया आण्टी को!"

वसीम ने एक आदाब घुमाके मार दिया।

मिसेज़ गुप्ता हँस पड़ीं। बोलीं, "अरे जाने दीजिए बहनजी, आजकल बच्चों का यही हाल है।" फ़ातिमा ने नैपी गीली कर दी। मिसेज़ गुप्ता फ़ौरन हाथ बँटाने पर तैयार हो गयीं। नैपी बदलते-बदलते बोलीं, "ये भोलानाथ बड़ा हरामज़ादा है।"...सीमा ने कोई बढ़ावा नहीं दिया। पर मिसेज़ गुप्ता को किसी बढ़ावे की ज़रूरत ही नहीं थी। बोलती चली गयीं, "मैं तो बहनजी, किसी के चक्कर में पड़ती नहीं। मैं क्या बताऊँ आपको। यह बिल्डिंग रहने लायक़ नहीं है। पटेल हिजड़ा है। फ़ेनी पेयिंग-गेस्टों पर गुज़ारा करती है। नज़र भोलानाथ की भी ख़राब है। मिसेज़ चिन्तक और रमा की लड़ाई फ़ोन पर थोड़ी हुई थी। भोलानाथ ने मिसेज़ चिन्तक को फाँसना चाहा। वह नहीं फँसी तो भोलानाथ ने रमा से जड़ दिया कि मिसेज़ चिन्तक उस पर डोरे डालने की कोशिश कर रही हैं।"...मिसेज़ गुप्ता हँसीं, "वह औरत पागल ही होगी जो भोलानाथ को फाँसने की कोशिश करेगी। पर रमा और भोलानाथ का अजीब किस्सा है। यह समझती हैं कि हर औरत भोलानाथ के चक्कर में है और वह समझते हैं कि हर मर्द रमा के चक्कर में है। मनचन्दानी और साधना से भी इन दोनों की लड़ाई इसी बात पर हुई थी। नहीं तो क्या दाँतकाटी दोस्ती हुआ करती उन चारों में! भोलानाथ और रमा के बिना उन्हें चैन नहीं और मनचन्दानी और साधना के बिना इन्हें क़रार नहीं। मनचन्दानी रमा को रमा बहन कहके लिपटाये हुए है और भोलानाथ साधना से भाभीजी कहकर लिपटे पड़ रहे हैं। तब मनचन्दानी के पास फ़ोन नहीं था। और भोलानाथ मनचन्दानी के साथ थोड़ा-सा रुपया लगाना चाहते थे कि मिसेज़ मिढा से दोस्ती कै दिन चल सकती है भला! मिसेज़ मिढा ज़रा दूसरे तरह की औरत है और रमा में चाहे दूसरे हज़ारों ऐब हैं, पर वह ऐब

नहीं है। हां, तो क्या कह रही थी मैं। हां, मनचन्दानी के यहां तब फ़ोन नहीं था। फिर उसके पास फोन आ गया तो उसने भोलानाथ से मालेदारी भी नहीं की और तब भोलानाथ को खयाल आया कि मनचन्दानी रमा पर बुरी निगाह डालता है। पति-पत्नी में खूब लड़ाई हुई। भोलानाथ पर दिल का दौरा पड़ गया। रमा ने कहा कि वह आत्महत्या कर लेगी। पर दोनों मरने का इरादा टाल गये और तय यह हुआ कि रमा मनचन्दानी को राखी बांध दे।"···यह कहते-कहते मिसेज़ गुप्ता हँस पड़ी और बोली, "रमा की राखी का मतलब ही यह है कि भोलानाथ ने फिर रमा पर शक किया है···"

सीमा तो कुछ दिनों बाद यह किस्से सुना-सुनाके चली गयी और अमजद उस बेसुरी 'सुरसिंगार' सुसायटी में अकेला रह गया। सुसायटी का हर आदमी बचे-खुचे वक्त का लगभग तीनचौथाई हिस्सा पड़ोसियों की टोह में गुज़ारता था।

जब तक सीमा रही, वह यह मोर्चा संभाले रही। उसे स्कैंडल्ज जमा करने का बड़ा शौक था। इसीलिए रमा, मिसेज़ गुप्ता और दूसरी 'लेडीज़' से उसकी निभ गयी। पर नज्मा से गप लड़ाने में उसे सबसे ज्यादा मजा आता।

नज्मा एक काल-गर्ल थी।

बनारस में तो वह यूं बेधड़क किसी काल-गर्ल से मिलने के बारे में सोच भी नहीं सकती थी। रमा और मिसेज़ गुप्ता ने उसे नज्मा के बारे में कई जरूरी बातें बता दी थीं।

१. कि नज्मा बत्तीस साल से एक दिन कम की नहीं है। पर कहती है कि चौबीस की है।

२. कि नज्मा इतनी खूबसूरत नहीं है, जितनी दिखायी देती है।

३. कि एक रात के चार-पांच सौ लेती है।

४. कि 'सुरसिंगार' के मर्दों के साथ कनसेशन करती है।

५. कि किसी सेठ ने तो उसको रख छोड़ा है। फ्लैट का किराया और मेक-अप का सारा इम्पोर्टेड सामान वही देता है।

६. कि नज्मा ने हरीश राय को रख छोड़ा है।

७. कि पहले नज़्मा नीली के नाम से फिल्मों में छोटे-मोटे रोल किया करती थी और असिस्टेण्ट डाइरेक्टरों में बहुत पोपुलर थी।

८. कि हरीश को वह उन्हीं फिल्मी दिनो से जानती और मानती है।

९. कि चूंकि वह अली अमजद के घर में आती-जाती है इसीलिए अली अमजद को हरीश की फिल्म लिखने को मिल गयी है, नहीं तो हरीश भला रामनाथ को छोड़कर अली अमजद के पास क्यों आता? रामनाथ उसकी सिलवर जुबली फिल्में लिख चुका था।

सीमा बड़ी मुँहफट लड़की थी। हरीश से पूछ बैठी।

"भाभी," हरीश ने कहा, "क्या झूठ है, क्या सच है, यह कोई नहीं जानता।..." सच्ची बात यह है कि यह हरीश की पिछली फिलम का एक संवाद था। रामनाथ का लिखा हुआ हिट संवाद। हरीश को रामनाथ के संवाद इसीलिए पसन्द थे कि स्पेलिंग और ग्रामर की गलतियों के बावजूद हर मौके पर खप जाते थे।

पर सीमा बड़ी सीधी-साधी लड़की थी। वह साधारण बातचीत करती थी। वह न संवाद बोले, न समझे। तो उसने हरीश को दौड़ा लिया। बोली, "झूठ वह है जो आप अभी बोले थे और सच वह होगा जो आप अब बोलेंगे।"

हरीश चकरा गया। हँसने लगा।

नज़्मा से उसे कोई सीरियस किस्म का इश्क नहीं था। एक फिलम के सेट पर मुलाकात हुई। और वह उसे अच्छी लग गयी। उन दिनों वह अँधेरी ईस्ट में रहा करता था। एक बेडरूम-हाल का फ्लैट था। और वह अकेला था। अली अमजद, बी. डी. और अलीमुल्लाह डिक्रूज़ गेस्ट हाउस ही में थे।

बी. डी. और रोज़ी का एक-तर्फा इश्क अब भी चल रहा था हालांकि रोज़ी अब 'माई के अड्डे' पर नहीं रहती थी। कुलाबा उठ गयी थी। वहाँ उसने अपना धन्धा शुरू कर दिया था। पर बी. डी. के प्यार पर उसके धन्धे का कोई असर नहीं पड़ा था। वह हफ्ते में एक-आध बार रोज़ी से मिलने जरूर जाता। कभी शिकायत न करता। बड़ी सादा

बात-चीत होती।

"कैसी हो ?"

"ठीक है। तुम कैसा है ?"

"हम भी ठीक हैं।"

"चाय पियेंगा ?"

इतनी-सी बात में कोई घण्टा-डेढ़-घण्टा लग जाता।

एक दिन बी. डी. बहुत उदास था। तो अलीमुल्लाह से बोला, "यार, बस यही एक सीन हुआ जा रहा है। लगता है जैसे किसी फिल्म की शूटिंग हो रही है और हम दोनों ही री-टेक पर री-टेक दिये जा रहे हैं। शॉट ओ. के. नहीं हो रहा है।"

अलीमुल्लाह चुप रहा क्योंकि फिल्म-भाषा वह समझता ही नहीं था। बोला, "यार बी., डी. मेरी तो समझ में नहीं आता कि तुम उस बहनचो तवायफ के चक्कर में निकलते क्यों नहीं।"

"औरत को मर्दानी गाली देते हो !" बी. डी. को अलीमुल्लाह की ग्रामर की गलतियाँ पकड़ने का बड़ा शौक था। "राही मासूम रजा का एक डायलाग सुनो। सीन यूँ है कि हीरोइन, जो एक स्ट्रीटवाकर है, राजा नामी एक दादा को यह सोचकर अपनी कमाई देती है कि वह भी दादर के दादा टार्जन जैसा होगा। पर राजा हीरो है। वह वैसा कैसे हो सकता है ? तो वह गंगा को एक लाफा मारता है। गंगा हीरोइन का नाम है। वहाँ साइड हीरो हिम्मत जौनपुरी भी है। वह राजा से कहता है कि औरत पर हाथ नहीं उठाते। इस पर राजा कहता है, 'तुम साला रण्डी को औरत बोलता है ?' बस, साइड हीरो को तकरीर झाड़ने का मौका मिल जाता है : 'यह तुम्हारी तरह असली डिबियों में नकली बूट-पालिश का धन्धा तो नहीं करती। दूध में पानी तो नहीं मिलाती। चावल में कंकर-पत्थर तो नहीं डालती। नकली दवा, नकली दारू, नकली सपने, नकली भविष्य तो नहीं बेचती। बिना किसी मिलावट, बिना किसी भूमिका, बिना किसी भाषण के अपना बदन बेचती है। अपनी इज्जत बेचती है। यह इसकी बेइज्जती नहीं, इज्जत के दाम हैं।" बी डी. चुप हो गया।

कमरे में सन्नाटा हो गया। भारी, मैला और बदबूदार सन्नाटा

"पब्लिक साली इस डायलाग पर ताली मारेगी।" वी. डी. ने कुछ देर के बाद कहा और अपनी चारमीनार सुलगाने में लग गया। अलीमुल्लाह फिर चुप रहा। उसे मालूम था कि वी. डी. पर कभी-कभी कड़वड़ाहट के दौरे पड़ते हैं।

"'आधा गाँव" के राइटर साले को हो क्या गया है?" वी. डी. ने सवाल किया।

"मैंने 'आधा गाँव' नहीं पढ़ी है।" अलीमुल्लाह ने कहा। "मैं हिन्दी नहीं जानता।"

"सब चूतियापन्थी है।" वी. डी. ने कहा।

"आज अम्माँ का एक खत फिर आया।" अलीमुल्लाह ने कहा।

"कहो तो जबानी सुना दूं?" वी. डी. बोला, "यार माँओं के खत इतने मुनाटनस क्यों होते हैं। यहाँ पर सब खैरियत है। खैरियत की बात सुनके झाँट सुलग जाती है।"

"आजकल खैरियत का मतलब बदल गया है।" हरीश आ गया। नज़मा साथ थी। "खैरियत का मतलब अब यह है कि मरे नहीं जिन्दा हैं।"

नज़मा खिलखिला के हँस पड़ी।

उस कमरे के कड़वे वातावरण में वह क़हक़हा एक गाली-सा लगा। वी. डी. ने नज़मा को घूरके देखा।

"अपने देश के लोगों को दुख-दर्द की आदत पड़ गयी है वीरेन्द्र कुमार उर्फ वी. डी., दुख बहुत हैं।"

"गलत," वी. डी. ने कहा, "दुख बहुत होते तो अब तक दुख पर टैक्स लग चुका होता।"

नज़मा को फिर हँसी आयी, पर वी. डी. का गम्भीर चेहरा देखकर वह अपना दिल मार गयी। हरीश ने ५५५ की डिबिया निकाली। ५५५ की डिबिया फिल्मी जगत में स्टेटस का चिन्ह है। हरीश डायरेक्टर हो चुका था। 'विल्स फ्लेक' या 'चारमीनार' नहीं पी सकता था। उसका लाइटर भी सुनहरा था। २२ कैरेट गोल्ड का।

वी. डी. ने अपनी सिगरेट माचिस से जलायी। उसका थीसिस यह था कि लाइटर से जलाने में सिगरेट का आधा मज़ा खत्म हो जाता है।

"यह मेरी फिल्म की हीरोइन नरमा है।" हरीश ने परिचय करवाया।

"असली नाम हलीमा, नकली नाम नरमा, फिल्मी नाम नीली," नरमा ने कहा।

"नीली क्यों ?" बी. डी. ने सवाल किया, "अच्छी-खासी सांवली हो।"

यह बात बी. डी. ने बड़ी संजीदगी से कही थी। पर नरमा समेत सब हँस पड़े जैसे उसने मजाक किया हो और कमरे में जमके बैठी हुई कड़वाहट दबे पाँव बाहर चली गयी और या तो वीर सावरकर मार्ग उर्फ पोर्ट बन्दर रोड की भीड़भाड़ में मिल गयी या बांद्रा तालाब में कूद पड़ी।

"आज अलीमुल्लाह की माँ का खत फिर आया है।" बी. डी. ने कहा।

परन्तु नरमा को अलीमुल्लाह, उसकी माँ और बी. डी. में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उसे अपना 'डिकूज' आना ही अच्छा नहीं लग रहा था। वह एक फिल्म की हीरोइन, फाइनेंसर की रखैल और डायरेक्टर की माशूका थी। उसके पास अपनी इटैलियन फिएट कार थी। 'डिकूज' और नरमा का कोई मेल ही नहीं था। पर हरीश ने जिद की इसलिए उसे आना ही पड़ा। वह अपनी फ्रेंचशिफॉन की साड़ी को सँभाले हुए मुश्किल से बैठी थी और कमरे के फर्श पर बिखरे हुए सिगरेट के टुर्रों को गिन रही थी। तैंतालीस तक पहुँची कि उसे लगा, जैसे कोई उसे पुकार रहा है।

"नरमा, यह देखो अलीमुल्लाह की मंगेतर की तस्वीर।" हरीश उसे एक छोटा-सा फोटोग्राफ दे रहा था। उसने ले लिया। देखा। अपनी तरफ से लड़की बहुत फैशन में थी। हेमा मालिनी के स्टाइल में आँखों का मेक-अप। मीना कुमारी के स्टाइल में मुस्कुराहट। वहीदा रहमान के स्टाइल में गर्दन का खम। शर्मिला टैगोर के स्टाइल में गालों का गड्ढा···

"लड़की नहीं, पँच-मेल मिठाई का डिब्बा है।" बी. डी. ने टुकड़ा लगाया और नरमा फिर हँस पड़ी। वही फुलझड़ी-सी हँसी। अलीमुल्लाह को वह हँसी बुरी लगी। बी. डी. की बात और थी। वह दोस्त था। कुछ भी कह सकता था। पर बिस्तर की चादर की तरह बिछी हुई यह लड़की उस लड़की पर नहीं हँस सकती जिसे अलीमुल्लाह की माँ ने अलीमुल्लाह

की बीवी वनने के लिए पसन्द किया हो।

बस, बात बढ़ गयी। वी. डी. ने नज़्मा का साथ दिया। और वी. डी. नज़्मा का साथ कैसे न देता? वह एक पैदायशी प्रोलतारी था। वह जोश में आकर, हमेशा की तरह, पलंग पर अकड़कर बैठ गया और सिगरेट के लम्बे-लम्बे दम मारने लगा, और खाँसने लगा, और तक़रीर करने लगा।

"आप अपने को समझते क्या हैं···"

वी. डी. को जब गुस्सा आता था तो वह 'आप-जी' पर उतर आता था।···

किस्सा मुख़्तसर यह कि अलीमुल्लाह ने उसी रात 'डिक्रूज़' छोड़ने का फ़ैसला किया। हरीश ने बहुत समझाया। झगड़े के बीच में आ जानेवाले अली अमजद ने भी समझाया। पर वह न माना।

और यूँ अली अमजद और वी. डी. 'डिक्रूज' में पाँच महीनों के बक़ाया किराये के साथ और अपनी-अपनी ज़िन्दगी के सूनेपन के साथ अकेले रह गये। और इसीलिए 'डिक्रूज़ गेस्ट हाउस' के कमरा नम्बर पाँच में वह रात बड़ी मुश्किल से कटी।

वी. डी. को अपने जीवन के सूनेपन का मज़ाक उड़ाना आता था, और शायद इसीलिए उसकी गिनती हँस-मुख लोगों में होती थी! पर अली अमजद को अपनी उदासी छिपाने की कला नहीं आती थी।

पर वह एक बड़ी अजीब रात थी। कमरे का सन्नाटा इतना खुरदुरा था कि खयालों की नर्म जिल्द छिली जा रही थी। वी. डी. पलंग पर था। अली अमजद सोफ़े पर।···और वी. डी. उदास था।

एकदम से बोला, "यार, मुझे उदास होना नहीं आता। बहुत बोरिंग चीज़ लगती है।"

"तुम्हें अलीमुल्लाह की मंगेतर का मज़ाक उड़ाने की क्या ज़रूरत थी?"

"जब मैं अपना मज़ाक उड़ाता हूँ तब तो अलीमुल्लाह को कभी बुरा नहीं लगता। सईदा तो अभी नयी-नयी मंगेतर हुई है यार! मैं बचपन का दोस्त हूँ। नाइन्थ क्लास में दोनों फ़ेल तक साथ-साथ हुए। पहला इश्क़ तक

हम दोनों ने मिल-जुलकर किया था···"

कमरे में फिर सन्नाटा हो गया, क्योंकि अली अमजद ने उस इश्क के बारे में कोई सवाल ही नहीं किया। दोनों अपने-अपने मैले और सख्त तकियों पर सर रक्खे छत की तरफ देखते रहे और सिगरेट पीते रहे।

"उस इश्क के बारे में कुछ नहीं पूछोगे ?" थोड़ी देर के बाद वी. डी. ने पूछा।

"नहीं," अली अमजद ने कहा।

उसके पास उसके अपने आधे-अधूरे इश्क थे। रुकैया, सबीहा, किशवर,···और क्या नाम था उसका ? हाँ, लता। लगता है जैसे यह नाम पिछले जन्मों की कहानियों से निकल आये हैं। या जैसे यह नाम किसी और की कहानी या जिन्दगी से तअल्लुक़ रखते हों। जैसे वह सिर्फ तमाशाई है··· दूर बैठा खुद अपना तमाशा देख रहा है। घाव के निशान देखकर घाव अवश्य याद आते हैं, पर दर्द तो नहीं याद आता ना !

याद क्या है ?
एक निशाने-ज़ख्म,
या एक रहगुज़र है।
ख्वाब के नक़्शे-कदम पर दर्द के नक़्शे-क़दम हैं।
रफ़्ता-रफ़्ता
ख्वाब के नक़्शे-क़दम भी
दर्द के नक़्शे-कदम भी
वक़्त के सहरा में जाकर
साथ इन चंचल बगूलों के कहीं पर,
थकके गिर जाते हैं शायद—
गिरके मर जाते है शायद
कौन उनकी जुस्तुजू में
वक़्त के सहरा में जाये !

रुकैया, सबीहा, किशवर और लता सिन्हा।···चार नाम। साधारण दिखायी देनेवाले चार नाम। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में न जाने कितनी रुकैयाएँ, सबीहाएँ, किशवरें और लता सिन्हाएँ होंगी।

परन्तु पाकिस्तान क्यों ?

परन्तु पाकिस्तान क्यों नहीं ? रुक़ैया पाकिस्तान में है। सवीहा पाकिस्तान में है। किशवर पाकिस्तान में है। लता सिन्हा पाकिस्तान में है। और क्या···जो बिछुड़ जाये वह पाकिस्तान में है। अब जुदाई के कई नाम हो गये हैं। जुदाई की कई क़िस्में भी हो गयी हैं। जुदाई जो घर के अन्दर है। जुदाई जो घर के बाहर है। जुदाई जो देशी है। जुदाई जो विदेशी है।···वह जो एक 'रट्टूमल भोंदूप्रसाद' हुआ करता था। हाँ, बाबू त्रिलोकनाथ श्रीवास्तव। घुटा हुआ-सा। लम्बी चोटी। मैली धोती। उजला कुरता। सुना था कि न्यूयार्क जाके टी. पी. श्रीवास्तव हो गया। नाम के बाकी अक्षर और सर की लम्बी चोटी गायब! कोई दो बरस हुए टूरिस्ट विज़ा पर हिन्दुस्तान घूमने आया था। उसकी गोरी-चिट्टी पत्नी, मिसेज़ सारा श्रीवास्तव, साथ आयी थी।···टी. पी. अमरीकन हो चुका था! और हिन्दुस्तान को देखकर अपनी पत्नी ही की तरह एक्साइटेड था।···

टी. पी.

एक इम्पोर्टेड जुदाई। अंग्रेजी लहजे में हिन्दी बोलती हुई जुदाई। दाल को डाल कहती हुई जुदाई।···

रुक़ैया, सवीहा, किशवर और लता सिन्हा। लिफ़ाफ़े पर टिकट की तरह चिपकी हुई जुदाई। मैं खैरियत से पाकिस्तान पहुँच गयी। तुम बहुत याद आ रहे हो। तुम्हारे बिना कुछ अच्छा नहीं लग रहा है। जिस दिन बहुत जी घबरायेगा, सबको छोड़-छाड़कर भाग आऊँगी। तुम नहीं तो यह पाकिस्तान क्या, मैं खुदा की जन्नत में भी नहीं रह सकती···'खुदा की बस्ती'[1] से आया हुआ यह खत अली अमजद को ज़बानी याद था। यह याद नहीं आ रहा था कि यह खत रुक़ैया ने लिखा था या सबीहा ने। दोनों के खत बहुत मिलते-जुलते थे···फिर दोनों की शादी हो गयी। अली अमजद को पता चला कि दोनों बहुत खुश हैं। दोनों के पति भी बहुत खुश हैं।

---

१. पाकिस्तानी उपन्यासकार शौकत सिद्दक़ी के उपन्यास का नाम 'खुदा की बस्ती' है।

जो सुन नहीं है वह अली अमजद है। और अली अमजद उन दोनों से बहुत दूर है।

रुक़ैया और सवीट्रा के बीच में जो दो साल बारह दिन हैं, उनका क्या बना? किस हाल में गुज़रे वह दो साल बारह दिन? गुज़रे कि नहीं? वह अपने इस सवाल से घबरा गया।

"तुम कुछ भी कहो। मगर अलीमुल्लाह को यह नहीं करना चाहिए था।" अली अमजद ने कहा।

"मैं कुछ कह ही नहीं रहा हूँ।" बी. डी. ने कहा।

कमरे में फिर सन्नाटा छा गया।

"बात यह है," थोड़ी देर के बाद बी. डी. खुद ही बोला, "अलीम के अपने प्राब्लम्ज़ हैं। वह कई महीनों से अलग होना चाहता था। पर कह नहीं पा रहा था। उसकी शादी होनेवाली है। जिम्मेदारियाँ बढ़नेवाली हैं। आज मुझे उस पर रहम आ गया तो मैंने उसे साफ़ होने का मौक़ा दे दिया।"

"तो अब तुम करोगे क्या?" अली अमजद ने बड़ी बेदर्दी से सवाल किया।

"किसी और से दोस्ती कर लूँगा।" बी. डी. ने बड़ी सादगी से कहा, "वैसे एक बिज़िनेस भी ध्यान में आयी है।"

"बिज़िनेस और तुम?" अली अमजद उठके बैठ गया।

"हाँ।" बी. डी. ने सिगरेट से सिगरेट सुलगायी, "अपने-आपको बेचना शुरू करता हूँ। इस पर सेल्ज़ टैक्स भी नहीं है।"

बी. डी. अपनी बात पर जोर से हँसा। रात के बम्बैया सन्नाटे में वह क़हक़हा बड़ा भयानक लगा। अली अमजद डर गया। उसने खिड़की से बाहर देखा। घोड़बन्दर रोड तालाब की टूटी हुई सीढ़ियों पर उकड़ूँ बैठी मुँह धो रही थी और पूरब का एक भैया अपनी साइकिल पर दूध के डिब्बे लादे लपका चला जा रहा था।...

अलीमुल्लाह दूसरे ही दिन बी. डी. को मनाने आया। पर बी. डी. ने उसे बहुत बुरा-भला कहके कमरे से निकाल दिया। अली अमजद मौजूद था, सबकुछ जानता भी था, पर कुछ कह नहीं सकता था।

उस दिन के बाद से वी. डी. और अलीमुल्लाह में बातचीत नहीं हुई। अलीमुल्लाह ने उसे अपनी शादी में भी नहीं बुलाया। वह चुपचाप 'डिकूज़' की दुनिया से निकल गया और शायद 'डिकूज़' को भूल गया। उसके पास जोगेश्वरी में एक बेडरूम-हाल का अपना फ्लैट था। एक खास अपनी, ओनरशिप की पत्नी थी। एक स्कूटर था। जीने के लिए और चाहिए भी क्या !

अलीमुल्लाह की पत्नी, सईदा, ने बहुत ज़ोर मारा कि वी. डी. जोगेश्वरीवाले फ्लैट में उठ आये। पर वी. डी. टस से मस न हुआ। उसने तीन और दोस्त बना लिये। खुश भी था कि उसका नया धन्धा चल निकला था।

वह फ़क़ीरों की एक वर्कशॉप चलाने और रोज़ी को याद करने और माई के अड्डे पर ठर्रा पीने और मछली के तले हुए कतले खाने ही को ज़िन्दगी समझ रहा था···शायद।

रोज़ी कफ़ परेड पर अकेली थी।

अलीमुल्लाह जोगेश्वरी के एक बेडरूम-हालवाले फ्लैट में अकेला था और उसी के साथ लेटी हुई सईदा बिस्तर पर अकेली थी क्योंकि अलीमुल्लाह किसी दवा का इश्तिहार था···खाने से पहले !

हरीश जूहू-पार्ले स्कीम के एक तीन बेडरूम-हाल वाले फ्लैट में अकेला था। उसके पास अपनी दो कारें और तीन रखैलें थीं। खुद उसे नज़मा ने रख छोड़ा था। पर वह अकेला था···क्योंकि जिस फ्लैट में वह मालिकों की तरह रह रहा था, उस पर नज़मा की नेमप्लेट लगी हुई थी। हरीश अकेला है क्योंकि अलीम और अली अमजद की तरह उसने भी मार्क्सवाद से 'सिक लीव' ले रक्खी है। जिस दिन उसने 'रायल सैल्युट' पीना शुरू किया, उसी दिन उसने वी. डी. से मिलना छोड़ दिया।

अली अमजद को यह बात बुरी लगी। पर वी. डी. ने यह बात भी हँसी में उड़ा दी।

"अरे यार, इन बातों पर सोचने के लिए वक़्त कहाँ है !" उसने 'चारमीनार' सुलगाने के बाद कहा, "जो मुझसे नहीं मिलता वह हम लोगों वाला हरीश थोड़े ही है। हम लोगों वाला हरीश तो यहाँ इस गन्दे

कमरे में सोच भी लिया करता था और जी भी लिया करता। हम हरीश को तो सोचने के लिए मन-एन-मेंड का सुएट चाहिए'''लिखने के लिए 'नॉट ब्लॉ' कलम चाहिए। पीने के लिए 'रॉयल सैल्युट' व्हिस्की चाहिए। सोने को डनलपिलो का गद्दा चाहिए और टॉप-क्लास की लड़की चाहिए। गोली मारो हरीश को। मुझे एक डायलाग राइटर चाहिए।"

"क्या चाहिए तुम्हें ?" अली अमजद चकरा गया।

"डायलाग राइटर।" बी. डी. ने कहा, "मेरे साथ काम करोगे ?"

"अरे, पर तुम्हें डायलाग राइटर की क्या जरूरत पड़ गयी ?"

"एक डायलाग राइटर से क्या काम बनेगा?" बी. डी. ने कहा, "आजकल मेरे पास तीन डायलाग राइटर, दो डाइरेक्टर, पन्द्रह मेक-अप-मैन और चार ड्रेस-डिज़ाइनर काम कर रहे हैं। मैं तुम्हें राइटिंग डिपार्टमेंट का इन्चार्ज बनाना चाहता हूं।"

अली अमजद ने पहली बार बी. डी. की तरफ गौर से देखा। उसके कपड़े अच्छे और साफ थे। जिस लाइटर से उसने अपनी 'चारमीनार' जलायी थी, वह सोने का था। उसकी ऐनक का फ्रेम सोने का था। दाहिने हाथ की बीचवाली उँगली में एक प्लैटिनम की सिगनेट रिंग थी।'''

बी. डी. मुस्कुराया। बोला, "मैंने सैकण्ड हैंड ज़िन्दगी का धन्धा शुरू कर दिया है।"

"फ़िल्म बना रहे हो क्या ?"

"चूतिया हूँ कि फ़िल्म बनाऊँगा ! मैं भिखमंगों की एक वर्क-शॉप चला रहा हूँ !"

अली अमजद को यक़ीन नहीं आया।

"दो हज़ार रुपये महीना दूंगा।" बी. डी. ने कहा, "सोच लो।"

सोचना क्या था। अली अमजद चार महीनों से बिल्कुल बेकार था। मगर'''

ज़ाहिर है, 'मगर' तो आयेगा बीच में।

"बात क्या है कि भीख माँगने की तरफ अभी तक पढ़े-लिखे लोगों का ध्यान नहीं गया है ? अब तक यह रैकेट गुण्डों के हाथ में था और तुम जानो, गुण्डों में कोई ऐस्थेटिक सेंस तो होता नहीं। किसी की आँखें फोड़कर उसे

अन्धा फ़क़ीर वना दिया। किसी की टाँगें तोड़ दीं···वग़ैरा-वग़ैरा। एक दिन लेटे-लेटे ब्रेन-वेव आ गयी कि भीख मांगने के काम को साइंटिफ़िक तरीक़े से आर्गनाइज़ किया जाये तो बहुत माल मिलेगा।···"

पता चला कि वी. डी. ने इस सवाल की ऊँच-नीच पर बहुत सोचा है। काम जोखम का भी था। जो लोग बड़े शहरों में भीख मँगवाने का काम करते हैं, वह भला किसी वीरेन्द्र कुमार एम. ए. (इकोनॉमिक्स) को इस धन्धे में घुसने क्यों देंगे! पर वी. डी. आदमी ज़िद्दी था। ठान गया कि मैं तो यही काम करूँगा।

तो एक दिन वह हाजी फ़कीरा के पास यह प्रोग्राम लेकर चला ही गया कि यह काम उस धन्धे से मेल खाता था। उन दिनों हाजी फ़कीरा भी किसी नये धन्धे में पैसा लगाने की सोच रहे थे।

यह बात बम्बई में हाजी फ़कीरा के सिवा कोई नहीं जानता था कि उनका असली नाम शिवमंगल प्रसाद है। पीलीभीत में तीन क़त्ल करके बम्बई भाग आये और शिवमंगल प्रसाद से हाजी फ़कीरा बन गये। दाढ़ी उग आयी। माथे पर सज्दे का निशान बन गया। हद तो यह है कि उन्होंने एक मामूली-सा आपरेशन भी करवा लिया कि किसी घपले का डर ही न रह जाये। दो-चार बरस में भिंडी बज़ार-महम्मद अली रोड-जे. जे. अस्पताल क्षेत्र में वह अच्छे-ख़ासे मुसलिम लीगी नेता भी हो गये। कारपोरेशन का चुनाव हुआ तो लीग के टिकट पर चुनाव लड़े भी और जीते भी। पर उनका असली धन्धा था हाजियों को ब्लैक के भाव विदेशी पैसा देना और उनसे विदेशी माल मँगवाना। धीरे-धीरे उनका काम चल निकला तो उन्होंने एक फिल्म स्टारनी को डाल भी लिया और हज भी कर आये। पुलिस में उनका रुसूख दिन दुना, रात चौगुना बढ़ने लगा। अखिल भारतीय पीढ़ी के नेता लोग उनके घर आकर चाय पीने लगे और अपनी-अपनी पार्टी के लिए चन्दा ले जाने लगे।···तो समाज में उनकी इज़्ज़त बढ़ी। कई स्कूल कमेटियों के अध्यक्ष चुन लिये गये। अध्यक्ष चुने गये तो हस्ताक्षर करना सीखना पड़ा और यूँ वी. डी. से उनकी पहली मुलाक़ात हुई। वी. डी. उन्हें बहुत पसन्द आया तो वह उनका सेक्रेट्री हो गया। उनके लिए तक़रीरें लिखने लगा। और उसी ने उन्हें अंग्रेज़ी के

का ख़याल उसे कम्पिटिशन के डर ही से आया।

"कमाल है।" हाजी साहब उसे देखकर हँसे, "तुम तो सुधर रहे हो। बिना बुलाये ही आ गये!"

"एक नया धन्धा समझ में आया तो सोचा कि पहले आप ही से पूछ लूँ।" बी. डी. ने कहा, "आप मना करेंगे तो किसी और से बात करूँगा···"

हाजी फ़क़ीरा भला क्यों मना करते!

और यूँ 'बेगर्ज़ वर्कशॉप' खुल गयी। और तय यह पाया कि एक 'आल इंडिया बेगर्ज़ यूनियन' बनायी जाये। और यह यूनियन फ़क़ीरों को संघटित करने का काम करे।

बी. डी. ने इस समस्या पर बहुत जी लगाकर विचार कर रक्खा था। उसका कहना था कि एक फ़क़ीर यदि एक ही क्षेत्र में भीख माँगता रहेगा तो थोड़े दिनों में लोग दूकानों के साइनबोर्डों और बिजली के खम्भों की तरह उसके आदी हो जायेंगे। नतीजे में आमदनी कम हो जायेगी। इसलिए उसका प्रोग्राम यह था कि फ़क़ीरों का अड्डा ही नहीं, उनका शहर भी बदलते रहना चाहिए। जैसे सरकारी अफसरों की बदली होती है, उसी तरह फकीरों की भी बदली होनी चाहिए। जो यूनियन का वफादार है उसे अच्छे सेंटर्ज़ में ट्रांस्फर किया जाये, जैसे : बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, काशी, प्रयाग, अजमेर···और जो फकीर लीडरशिप से अकड़ने की कोशिश करें, उन्हें गाजीपुर, प्रतापगढ़ और इसी तरह के दूसरे सड़े हुए क्षेत्रों में सज़ा के तौर पर ट्रांस्फर कर देना चाहिए।···

हिन्दुस्तान के लोगों को भीख देने और भीख माँगने का बड़ा शौक़ है। जो भीख दे नहीं सकता वह किसी-न-किसी स्टाइल में भीख माँगने लगता है। यानी पूरी सामाजिक ज़िन्दगी भीख के धागे में पिरोयी हुई है, इसलिए यदि भीख का राजनीतिक प्रयोग किया जाये तो हिन्दुस्तानी गणराज्य 'बेगर्ज़ यूनियन' के क़ब्ज़े में आ सकता है।···

बी. डी. ने ऐसी पट्टी पढ़ायी कि हाजी फ़क़ीरा भारत गणराज्य के राष्ट्रपति होने के सपने देखने लगे।···कि आराम की जगह वही है। और यूँ बी. डी. 'बेगर्ज़ वर्कशॉप' का करता-धरता बन गया। और बी. डी.

के दुश्मनों को भी यह बात माननी पड़ेगी कि बी. डी. ने उस 'वर्कशॉप' में जी-जान से काम किया।

पहले यह 'वर्कशॉप' जोगेश्वरी के एक पुराने गैरेज में खोली गयी। यह गैरेज दो-मंजिला था। नीचे एक साथ दो गैरेज। ऊपर तीन कमरे, एक छोटी-सी बालकनी और एक मण्डास-कम-बाथरूम।

नीचे के एक गैरेज में आफिस था। दूसरे में कॉस्ट्युम सेक्शन, मेक-अप रूम और प्रापर्टी। ऊपर के तीनों कमरों में क्लास चलते थे।

बी. डी. भीख माँगने को एक कमर्शियल आर्ट बनाना चाहता था। इसी लिए वह कुछ सवादनेगक, कुछ मेक-अप करनेवाले और एक-आध डाइरेक्टर रखना चाहता था जो फकीरों को ठीक तरह से भीख माँगना सिखा सकें। पहले तो फ़कीरों ने 'बेगर्ज वर्कशाप' का कोई नोटिस नहीं लिया। परन्तु जब 'वर्कशाप' के फकीरों में कॉम्पिटिशन हुआ तो फकीरों ने देख लिया कि 'वर्कशॉप' वालों के सामने वह टिक ही नहीं सकते। तो धीरे-धीरे 'वर्कशॉप' की मेम्बरी बढ़ने लगी और बी. डी. को एक कार के साथ दो बॉडीगार्ड भी मिले। क्योंकि फकीरी का 'रैकेट' चलानेवाले 'वर्कशाप' को आसानी से नहीं झेल सकते थे। दो-एक बार 'वर्कशाप' पर हमला भी हुआ। बी. डी. को धमकाया भी गया। और यहीं हाजी फक़ीरा खास तौर से काम आये। एक 'फ़कीर सेना' की स्थापना हुई और हाजी साहब उसके नेता हो गये! उन्होंने एक प्रेस कान्फ्रेंस में कहा :

"समाज और सरकार को चाहे यह अच्छा लगे या बुरा, पर अपने देश में करोड़ सवा करोड़ लोग मुसतकिल तौर से, और तीन साढ़े तीन करोड़ लोग टेम्पोररी तरीके से भीख माँगने का काम करते हैं। यानी फकीर ही मुसलमानों के बाद हिन्दुस्तान की सबसे बड़ी माइनॉरिटी हैं और मुसलमानों और हरिजनों की तरह उन्हें भी यहाँ जीने और अपना कारोबार चलाने का पूरा अधिकार है।...और मैंने उनकी लड़ाई लड़ने का फैसला किया है। आज मैं यह एलान करना चाहता हूँ कि फकीर सेना विरोधियों का मुँहतोड़ जवाब देगी..."

और कुछ विरोधियों का मुँह जब सचमुच टूट गया तो फ़कीरी का रैकेट चलानेवाले समझ गये कि 'वर्कशाप' से लड़ना अपनी शामत

वुलवाना है···चुनाँचे 'वर्कशाप' के पास वम्वई में भीख माँगने की मोनोपली हो गयी।

···अली अमजद हक्का-वक्का रह गया। उसने वी. डी. की तरफ़ देखा। वी. डी. देवताओं की तरह मुस्कुरा रहा था।

"ट्राई करने में क्या हर्ज है यार?" वी. डी. ने कहा, "दो हज़ार रुपये महीना कम नहीं होते। सोच लो।"

"ट्राई करता हूँ।" अली अमजद ने कहा।

"तो कल ताजमहल में एक कमरा वुक किये देता हूँ। हरीश के साथ वैठ जाओ स्क्रिप्ट पर।"

"हरीश के साथ!"

"नाम के लिए उसका फ़ोर्थ असिस्टेंट वर्कशॉप में काम करता है।" वी. डी. ने कहा, "पर संवाद तुम लिखोगे तो तुमसे क्या पर्दा!"

वात तय हो गयी।

दूसरे दिन ताज में हरीश और अली अमजद की मुलाक़ात हुई। दोनों में से कोई सच वोलने को तैयार नहीं था। इसलिए तय हुआ कि दोनों ही वी. डी. के साथ फेवर कर रहे हैं। पुरानी दोस्ती है। दोनों ने कभी यह सोचा भी नहीं था कि वी. डी. इतना गिर भी सकता है।

जव दोनों एक-दूसरे से यह वातें कह चुके और 'जिन और जिंजर' पी चुके, कोई चालीस-पचास फ़ोन करके लेखकों, कई प्रोड्यूसरों और डाइरेक्टरों को यह वता चुके कि वह 'ताज' से वोल रहे हैं जहाँ वह एक स्क्रिप्ट पर वैठे हैं, तव काम शुरू हुआ।

हरीश और अली अमजद ने अभी हीरो यानी फ़क़ीर का नाम ही तय किया था कि वी. डी. का फ़ोन आ गया।

"कौन, अमजद!"

"हाँ।"

"खवर आयी है कि शाहजहाँपुर में ज़वरदस्त हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया है। इसलिए वह विहार के क़ त वाला स्क्रिप्ट अभी रहने दो। भुखमरी से लोग वोर भी हो चुके हैं। अरे, जव वम्वई ही में सैकड़ों लोग भूखे मर रहे हैं तो विहार के भूखों में कौन-से सुर्ख़ाव के पर लगे हैं! फिर

सुना है कि फिल्म वाले भी बिहारियों के लिए जुलूस निकालनेवाले हैं। तो दिलीप कुमार, राजकपूर, देव आनन्द, राजेश खन्ना और धर्मेन्द्र के सामने हमारे आर्टिस्टों को कौन पूछेगा ? तो जब तक फिल्म वाले बिहारियों के लिए चन्दा माँगें, हम शाहजहाँपुर के फसाद को क्यों न कैश कर लें। दो स्क्रिप्ट तैयार करो। एक भिंडी बाजार के लिए और दूसरा शिवाजी पार्क के लिए•••"

"अच्छी बात है।"

"परसों तक शाहजहाँपुर से दोनों तरफ के सौ-सौ आदमी आ जायेंगे।" बी. डी. ने कहा, "कुछ बच्चेवाली औरतें भी मँगवायी हैं।"

अली अमजद को एक जबरदस्त आइडिया आया।

"यार, दो-चार जवान लड़कियाँ भी मँगवा लो। रेप की कहानी अच्छी बनती है।"

"रेप ?" हरीश चौंका, "नहीं भई। फकीरिनों के रेप से किसे हमदर्दी होगी !"

"फ़कीरिनें नहीं। हिन्दू-मुसलमान लड़कियाँ।" बी. डी. ने कहा।

कमरे में सन्नाटा हो गया।

शायद तीनों अपने-आपसे शरमा रहे थे। शायद तीनों यह नहीं जानते थे कि पीछे हटते-हटते वह यहाँ तक आ गये। शायद तीनों अपने-आपको पहचान नहीं पा रहे थे।

शाहजहाँपुर माँ-बहन की गाली की तरह अश्लील हो गया था।

"यार बी. डी.•••" हरीश कुछ कहते-कहते रुक गया।

"यह प्रोटेस्ट का युग नहीं है।" बी. डी. ने कहा, "सिर नेहुड़ा कर वास्तविकता को ऐक्सेप्ट करना सीखो।•••" फिर सन्नाटा। "या आत्म-हत्या कर लो। तुम अली अमजद के किसी उपन्यास के पात्र नहीं हो कि लड़ते ही चले जाओगे। तुम तुम हो। मैं मैं हूँ। अली अमजद अली अमजद है। हम तमाम लोग सोचते कुछ और हैं, करते कुछ और हैं। इसी कंट्राडिक्शन में हमारे जीने की सकत है।"

कोई कुछ नहीं बोला।

अली अमजद ने दूसरा स्क्रिप्ट लिखने के लिए सादा कागज निकाल

लिया।

वी. डी. खड़ा हो गया।

"चलता हूँ। फिल्म फेयर अवार्ड का चक्कर चलाना है।"

"अवार्ड से तुम्हें क्या मतलब ?" अली अमजद ने जलकर पूछा।

वी. डी. मुस्कुराया।

"अखिल भारतीय वेगर्ज़ यूनियन में नौ लाख अस्सी हज़ार सात सौ बारह मेम्बर हैं। अवार्ड से मुझे मतलब नहीं होगा तो किसे मतलब होगा? आकाशवाणी और रेडियो सीलोन पर फ़रमाइशी गाने बजवाने की मोनोपली भी मेरे पास है। जिस म्युज़िक डाइरेक्टर को कहो फ़्लाप करवा दूँ। अभी पिछले दिनों 'रैन बसेरा' फिल्म के खिलाफ़ मैंने ही आन्दोलन चलवाया था कि उसमें एक चोर का नाम बालमीकि था···मैं क्या बालमीकि का रिश्तेदार हूँ। पर बड़े-बड़े प्रोड्यूसर और डाइरेक्टर, छेदीराम 'गवारा' के खिलाफ़ हैं कि उसने लो-बजट फिल्मों का चक्कर चला दिया है इसलिए बड़े-बड़े लोग उसकी फिल्मों की तारीफ़ करते हैं, पर एक 'एंटी छेदीराम गवारा फंड' भी है जो छेदीराम की फिल्में फ़्लाप करवाने के लिए है। मैं एंटी 'छेदीराम युनाइटेड फ्रंट' की वर्किंग कमेटी का परमानेंट इनवाइटी हूँ। अरे रे रे···दूसरी ज़रूरी बात भूल ही गया था। एक कैम्पेन के लिए डाइलाग की ज़रूरत है। हवा यह बाँधनी है कि राजेश खन्ना दिलीप कुमार से अच्छा ऐक्टर है।"

"यह कौन मानेगा यार ?" अली अमजद ने कहा।

"कोई नहीं मानेगा।" वी. डी. बोला, "ऐटमास्फ़ियर यह क्रियेट करना है कि राजेश खन्ना 'फिल्म फेयर अवार्ड' के लिए पैसे खरच रहा है। वह तो कर ही रहा होगा। पर 'बेगर्ज़ यूनियन' इस साल का अवार्ड मनोज कुमार को दिलवा रही है। आध घण्टे बाद वहीं मीटिंग है···"

वी. डी. चला गया।

हरीश लेट गया।

"यार, यह किस चूतिया-चक्कर में फँस गये हम लोग ?" अली अमजद ने पूछा।

हरीश थोड़ी देर तक अपनी अधखुली आँखों से उसकी तरफ़ देखता

रहा, जैसे उसके सवाल का जवाब सोच रहा हो। फिर बोला :

"हिन्दू लड़की का नाम लता रखते हैं।"

"अयँ ?"

"सवाल यह है कि लता माथुर हो, कि लता गुप्ता।"

"यह हिन्दू लड़की कहाँ से आ गयी यार ?"

"शाहजहाँपुर से।" हरीश ने कहा, "लता सिन्हा अच्छा नाम है।"

रुकैया, सबीहा, किशवर और लता सिन्हा।

देखते-देखते
सारे दिन की थकी धूप
इस नाम की झाड़ियों में कहीं खो गयी
और मैं
हिज्र के दर्द में मुब्तला
अपनी परछाइयों से जुदा,
रास्ते पर अकेला खड़ा रह गया...

अली अमजद भी लेट गया। वह रुकैया, सबीहा, किशवर और लता सिन्हा को याद कर लेने से थक गया था। याद कोई हल्की-फुल्की चीज नहीं होती बादलों के गाले की तरह कि गुजर जाये और पता भी न चले। हर याद गुजरा हुआ एक जमाना है...और कोई जमाना हल्का नहीं होता।

अली अमजद ने सामनेवाले ड्रेसिंग टेबिल के आईने में अपना अक्स देखा। वह अपने को पहचान न पाया। बहुत बदल गया था। तो उसने आँखें बन्द कर लीं। गुनगुनाने लगा :

जिनसे मैं छूट गया अब वह जहाँ कैसे हैं
शाखे-गुल कैसी है
फूलों के मकाँ कैसे हैं
जिस गली ने मुझे सिखलाये थे आदाबे-जुनूँ
उस गली में मेरे पैरों के निशाँ कैसे हैं ?
शहरे-रुसवाई में चलती हैं हवाएँ कैसी
साख कैसी है जुनूँवालों की

क़ीमते-चाके-गरीवाँ क्या है
चाँद तो अव भी निकलता होगा
चाँदनी अपनी हिकायाते-वफ़ा
अव वहाँ किसको सुनाती होगी
चांद को नींद न आती होगी
मैं तो पत्थर था,
मुझे फेंक दिया
ठीक किया
आज उस शहर में शीशे के मकाँ कैसे हैं···

"यार, जव तक यह न पता हो कि उसकी उम्र क्या है, सूरत-शक्ल कैसी है, तव तक उसके वारे में सोचूं कैसे ?" वहुत दूर से हरीश की आवाज़ आयी।

"किसकी सूरत-शक्ल ?" अली अमजद ने चकराकर पूछा।

"अरे यार वही, लता सिन्हा···"

वही लता सिन्हा।

तव तो वह चौवीस साल की थी। रंग साँवला। क़द लम्वा। चमकदार वड़ी-वड़ी आँखें, तर्शे हुए वाल···

जिन छोटे-छोटे वालों के साये ने
एक रात के सन्नाटे में
चुपके से मेरे कमरे में आकर
मुझसे वफ़ा का अहद किया था।
जिन होंठों ने
मेरे सीने और चेहरे पर
प्यार के अंगारे वोये थे।
जिन गहरी-गहरी आँखों को
मेरे होंठों ने चुपके से वन्द किया था।
जिस पत्थर ने मेरे दिल में वैठके घर के ख्वाव तराशे।
उन पलकों, उन छोटे,वालों, होंठों, आँखों—
और वेदार वदनवाली पत्थर की दिल-कश मूरत

अपना दाग़ा छूट गयी है।
मैं अपने कमरे में,
अकेला,
घर के चंचल ख़्वाब को बहलाने में लगा हूँ
उनके बदन की ख़ुशबू,
अपने बाल बिखेरे
यादों का एक मैला-सा पैराहन पहने
इस कुरसी पर बैठे-बैठे उकताकर उठ जाती है,
उस कुरसी पर बैठके फिर रोने लगती है।

कहानी ख़तम। पैसा हज़म।

लता सिन्हा अली अमजद को ज़बानी याद थी…अपने नाम की तरह। दूसरों के ख़ूबसूरत शेरों की तरह। वह उसे गुनगुना चुका। परन्तु दूसरों के ख़ूबसूरत शेरों की सबसे बड़ी ख़राबी यह होती है कि आप उन्हें केवल गुनगुना सकते हैं। अपना नहीं सकते। यह सोचकर उदास भी हो सकते हैं कि वह शेर आपका क्यों नहीं है।

अली अमजद को लता सिन्हा से कोई शिकायत भी नहीं थी। उसकी ट्रैजिडी यह थी कि वह कान्ता सिन्हा की बड़ी बहन थी और यदि किसी मुसलमान से शादी कर लेती तो कान्ता के ब्याह में अड़चन पड़ती…दिल के आसपास भी कितनी पगडण्डियाँ होती हैं!

यह पगडण्डियाँ जंजीर बन जाती हैं और दिल की तरफ़ आनेवाले सपनों को जकड़ लेती हैं।

अली अमजद कान्ता की शादी का इन्तज़ार करने पर तैयार था। पर लता के दिल के पास से उसकी बेवा माँ की पगडण्डी भी गुज़रती थी और वह बड़ी बेटी को ब्याहे बिना छोटी को ब्याहने पर तैयार नहीं थी।

लता सिन्हा ने अली अमजद से बेवफ़ाई नहीं की। उसने तो बस, दिल मारकर, श्री वी. के. श्रीवास्तव, आई. ए. एस. से शादी कर ली। और अली अमजद के दिल में सन्नाटा हो गया।

आ जाव कि अब ताक़ते-दिल, ताक़ते-दिल है।
अब दिल के धड़कने की भी आवाज़ नहीं है…

"एक मुसलमान भी तो है ?" हरीश ने पूछा ।

"हाँ।" उसने कहा, "किशवर।"

"यह तो बड़ा खूबसूरत नाम है···तो कहानी यह हुई, मध्यम वर्ग की रखते हैं उसे। बाप वकील था···"

"नहीं।" अली अमजद ने कहा, "किशवर का बाप लाजिक पढ़ाते थे। चूंकि लड़का लड़की से प्यार करता है, और लड़की लड़के से, इसलिए साबित हुआ कि मुहब्बत कोई अच्छी चीज़ नहीं है···"

"क्या ?" हरीश चकरा गया, "यह क्या लॉजिक हुई ?"

"लॉजिक हुई हो या न हुई हो," अली अमजद ने कहा, "दोनों की शादी नहीं हुई।"

"हमें शादी से क्या मतलब ? बल्कि मैं, तो कहता हूँ कि शादी हुई। सुहागरात न मन सकी। वह घूंघट उठा ही रहा था कि बलवाई घुस आये। पति मार डाला गया और पत्नी को चौबीस आदमियों ने क्यू बना कर रेप किया।"

"बिला वजह। बल्वा हुआ ही नहीं था। किसी और से उसकी शादी ज़रूर हो गयी। भला-सा नाम है उसके पति का। मुहम्मद अब्दुल्लाह खाँ, सिविल इंजीनियर, मुरादाबाद !"

"मुरादाबाद !" हरीश बोला, "मुरादाबाद नहीं यार, शाहजहाँपुर। कुछ और सोच रहे हो क्या ?"

"नहीं। मगर उसका नाम किशवर था। वह इलाहाबाद की थी और उसकी शादी मुरादाबाद के सिविल इंजीनियर मुहम्मद अब्दुल्लाह खाँ से हुई थी। और···" वह चुप हो गया।

"और क्या ?"

"और यह कि मैं फिर अकेला रह गया।"

कमरे में फिर सन्नाटा छा गया। और फिर थोड़ी देर बाद अली अमजद हरीश को कमरे के सन्नाटे के साथ अकेला छोड़कर चला गया। वह कहीं अकेला बैठकर जिन्दगी का बही-खाता ठीक करना चाहता था।

बी. डी., अलीमुल्लाह, हरीश···

रुकैया, सबीहा, किशवर, लता सिन्हा···

भोलानाथ, रमा चौरड़ा, मिसेज़ वर्मा, पीटर उर्फ़ रामनाथ तेग़ख़....

अली अमजद ने अपने-आपको नामों के एक घने जंगल में अकेला पाया...यही हाल सबका है। सभी नामों के जंगल में अपने व्यक्तित्व के टूटे हुए आईनों में हज़ार सिरोंवाले राक्षस बने खड़े हैं और अपने-आपको डरा रहे हैं। आगे कोई कल नहीं। गुज़रे हुए कल की दीवार से पीठ लगाये सभी अपने वर्तमान की तरफ़ डरी हुई निगाहों से देख रहे हैं। बीते हुए कल के सिवा जैसे कोई सच्चाई ही न रह गयी हो!

अली अमजद बहुत देर तक नामों के जंगल में भटकता रहा। और सोचता रहा कि जीने और न जीने में क्या फ़र्क़ है! ...बम्बई इस सवाल से बेख़बर अपनी सड़कों पर, उसके चारों तरफ़, अपनी भाग-दौड़ में लगी रही।

बम्बई!
आव,
हम-तुम चलें
नींद के गाँव में
धुन्ध के शहर में सारी परछाइयाँ सो गयीं।
इस पसीने के गहरे समुन्दर के साहिल पे टूटी हुई
सारी अँगड़ाइयाँ सो गयीं।

शोर कम हो गया।
क़हक़हे सो गये।
सिसकियाँ सो गयीं।
—सारी सरगोशियाँ सो गयीं।
रास्ते,
चलते-चलते,
घरों में समाते गये।
शहर अकेला खड़ा रह गया।
क्यों न हम इस अकेले, भटकते हुए शहर को साथ लेते चलें,
नींद के गाँव तक।
रात ढलने लगी।

आँख जलने लगी।

लफ़्ज़ ख़ुद अपनी आवाज़ के बोझ से थक गये।

आव,

सरगोशियों की रिदा ओढ़ लें

आव सरगोशियों ही को रख़्ते-सफ़र की तरह बाँध लें।

परन्तु अली अमजद के पास सरगोशियाँ थीं ही नहीं। कोई नींद के गाँव तक साथ जानेवाला भी नहीं था···सड़कें जाग रही थीं। पैरापेट के उधर सागर जाग रहा था। बड़ी-बड़ी बिल्डिगों में रोशनियाँ जाग रही थीं।···बी. एस. टी. की बसें जाग रही थीं···बस, माई का अड्डा सो रहा था···क्योंकि वहाँ समाज-कल्याण केन्द्र का ऑफिस खुल गया था। और ऑफिस शाम को बन्द हो जाते हैं। मिस्टर और मिसेज़ डिमूज़ा मंगलौर वापस जा चुके थे।···

इसी रात उसे पता चला कि कुछ भीख माँगनेवालियों की दर्द-भरी कहानियाँ सुनने से शहर के कुछ क्षेत्र में हिन्दू-मुसलमान तनाव पैदा हो गया। एक-आध झड़पें भी हुईं···और बी. डी. मारा गया।

अली अमजद को ग़ालिब याद आ गये।

मारा ज़माने ने असदुल्ला ख़ाँ तुम्हें!

बी. डी. जो यूं न मरता तो उसकी मौत बेमज़ा लगती। अब पता नहीं 'डिक्रूज़' के उस कमरे में कौन रहेगा!···पहले दरवेश की कहानी ख़त्म हुई। बाकी तीनों दरवेश अपनी बारी के इन्तिज़ार में हैं।

मिरज़ा ग़ालिब ने हरगोपाल तफ़्ता को एक ख़त में लिखा था:

"मुझको देखो, न आज़ाद हूँ न गिरफ़तार···न खुश हूँ नाखुश। न मुर्दा हूँ न ज़िन्दा। जिये जाता हूँ। बातें किये जाता हूँ। रोटी रोज़ खाता हूँ। शराब गाह-गाह पिये जाता हूँ। जब मौत आयेगी मर रहूँगा। न शुक्र है। न शिकायत···"

यह ख़त बी. डी. भी लिख सकता था। यह ख़त हरीश भी लिख सकता था। अली अमजद भी लिख सकता था···

रात की कोई ग़ज़ल हो तो वही गाव

कि इस सुबह के पास

कोई नगमा,
कोई आवाज नहीं
न उभरता हुआ सूरज है
न डूबा हुआ चांद
रात के वन की तरफ
मुंह किये
हैरान
परीशान
खड़े हैं हम लोग···
सांस रोके हुए बैठी है हर एक राहगुजर
कोई आता ही नहीं लेके तमन्ना की सलीब
सख्त हालात की पत्थर-सी जमीं पर गिरकर
कहकहे शीशे की मानिन्द हसी,
दिल की तरह नाजुक थे,
कहकहे टूट गये।
हौसले पस्त हुए
रात-भर जागी हुई आंखों में
सुबह को तरसी हुई आंखों में
सिर्फ जलते हुए लम्हों की तपिश
एक बेनाम खलिश।

"जबान जरा मुश्किल है।" हरीश ने कहा, "लोग समझ नहीं सकते।"

"कौन लोग?" अली अमजद ने पूछा, "वह लोग जिन्होंने वी. डी. को मारा?"

"नहीं।" हरीश ने कहा, "वी. डी. को तो पढ़े-लिखे लोगों ने मारा। जिस सीन में वी. डी. कत्ल हुआ वह मेरा लिखा हुआ था और उसके संवाद तुमने लिखे थे।"

पिछले दस-बारह दिनों से वह यही बात अपने-आपसे छिपाये हुए था। और शायद अपनी आंखों में धूल झोंकने के लिए उसने यह कविता भी लिखी थी। इसीलिए वह झल्ला गया।

"न तुमने वह सीन लिखा था न मैंने वह संवाद।" उसने कहा, हमसे वी. डी. ने लिखवाया था और इस काम के पैसे बाकी हैं।" अली अमजद खुद ही अपनी बात पर तिलमिला गया।

हरीश ने उसके गिलास में बोतल की बची-खुची व्हिस्की उँड़ेल दी।

"वी. डी. और बाकी पैसों को गोली मारो यार। शराब पियो।"

अली अमजद पी गया और नीट व्हिस्की की कड़वी मजेदार गर्मी उसके सारे बदन में दौड़ गयी। उसे नशे से ज़्यादा यह गनगनाहट पसन्द थी। इसीलिए वह अपनी शराब में पानी या सोडा नहीं मिलता था··· बाकी तमाम चीज़ों में तो मिलावट है ही। दूध से लेकर राजनीति तक, बिना मिलवट के बाज़ार में कुछ नहीं मिलता। शराब का भी कोई भरोसा नहीं। बोतलें असली होती हैं, शराब नक़ली···तो फिर उसमें पानी या सोडा मिलाने से क्या हासिल ?

"तो साबित यह हुआ कि मार्क्सइज़्म-विज़्म में कुछ नहीं रक्खा है।"

अली अमजद चौंक पड़ा। हरीश न जाने क्या-क्या कहकर इस नतीजे पर पहुँचा था। परन्तु वह यह नहीं कहना चाहता था कि उसने हरीश की बात ही नहीं सुनी। इसलिए होंठों में एक सिगरेट लटकाकर, माचिस ढूँढ़ते हुए बोला :

"इसमें मार्क्सइज़्म का क्या कुसूर है ?"

"मार्क्सइज़्म का कुसूर यह है कि हम उनसे अच्छे नहीं हैं, जिनके खिलाफ हम तक़रीर झाड़ते हैं। वी. डी. एक जमाने में ज़िला कमेटी का सिक्रेट्री हुआ करता था। स्टूडेंट फेडरेशन का नेता हुआ करता था। बिलकीस बुखारी का आशिक़ हुआ करता था और मरा तो भीख माँगने का रैकेट चलाते हुए।"

"बिलकीस बुखारी तो बड़े मशहूरों में हुआ करती थी।" अली अमजद ने कहा, "दस-बारह दिन मुझ पर भी आशिक रह चुकी है। क्या चीज़ थी खुदा की कसम ! सब जानने थे कि वह किसी की नहीं। पर सब उसके इशारों पर नाचा करते थे। वह बहुत-से लड़कों को ले आयी स्टुडेंट फेडेरेशन में।"

"तुम्हें भी ?"

"नहीं। मैं ज़रा पहले आ गया था।"

"मुझे तो वही लायी।"

"तुम्हें कितने दिनों बाद पता चला कि…"

"फ्लर्ट थी साली।"

"पर थी बड़ी मजेदार। बिस्तर पर साथ लेटती तो लगता कि सुबह का ठण्डी हवा साथ लेटी हुई है…"

वी. डी. की बात खुद-ब-खुद खत्म हो गयी। बिलकीस बुखारी की बात होने लगी।…और जब शराब की दूसरी बोतल आधी रह गयी तो दोनों यह बात भूल चुके थे कि वह अपने दोस्त वी. डी. की मौत का गम गलत करने के लिए शराब पीने बैठे थे।

गम कोई हिसाब थोड़े ही है कि गलत या सही होगा! गम तो एक वास्तविकता है। जिन्दगी की तरह। या शायद मौत की तरह। मौतें भी तरह-तरह की होती हैं। एक मौत वी. डी. की भी है। और एक मौत वह भी है *जिसे अली अमजद और हरीश अपनी जिन्दगी समझे बैठे थे।* और एक मौत माई के अड्डे की भी है…और एक मौत उन अच्छी कहानियों की भी होती है जो बुरी हिन्दी फिल्में बनने के लिए फेमस महालक्ष्मी के किसी आफिस या पाली हिल और जूहू-पारले-स्कीम के किसी बँगले के ऐसे ड्राइंगरूमों में बेची और खरीदी जाती हैं जिनमें उनके मालिकों के व्यक्तित्व का पता नहीं चलता।

मौत!
शाम तक सुबह से जी ऊब गया।
दिल भी सूरज की तरह डूब गया।
मौत!
मौज-दर-मौज है दर्द।
आस पट्टी से लगी बैठी है।
वक्त के हाथ हुए जाते हैं सर्द।
आस्मां खाली है,
सूरज है,
न चाँद।

चाँदनी आँखों की अफ़्सुरदा है।
धूप चेहरे की है माँद
दिल की धड़कन में किसी और की चाप।
और वह,
जिसका कोई रंग,
कोई रूप नहीं।
दिल के आंगन में कहीं धूप नहीं।
अली अमजद घर आ गया।

वी. डी. तो मरते ही रहते हैं। उसे सीन लिखना था।

खिड़की की सलाखों के उधर ग्रिल के पार, नारियलों के झुण्ड तक उतरकर चाँद रुक गया था'''कमरे में गयी रात का सन्नाटा था। भोलानाथ खटक ओर रमा की लड़ाई ख़त्म हो चुकी थी।

अली अमजद ने फिर लिखना शुरू किया।

वही सीन ७५। वही डाकख़ाना। वही मुंशी सड़क। वही अवुलखैर की अम्माँ और वही खत।

अबुलखैर की माँ :

'''और अवुलखैर के अब्बा को मालूम होय कि हियाँ सव ख़ैरियत है। दू महीने से हम्में साँझ के वखत हरारत हो जा रही। अवुलखैर के वड़के वेटे को काली खांसी है। छोटके को माता निकली हैं। ओकी दुलहिन को कानी कौन विमारी हो गयी है। पता ना चल रहा। अवुलखैर को एक ठो माटीमिला टकसीवाला धकिया दिहिस। टँगरी की हड्डी दू जगह से टूट गयी है। पलस्तर चढ़ गया है। उमीद है कि उहाँ भी सव खैरियत होगी।

(मुंशी सड़क मुस्कुरा देता है।)

मुंशी सड़क :

सव तो वीमार हैं। फिर खैरियत क्यों लिखवा रही हो?

(राजा की आवाज़ आती है।)

राजा :

खैरियत का मतलव अव ई है मुंसी सड़क, कि मरे नहीं जिन्दा हैं।

(मुंशी उदासी में राजा की तरफ़ देखता है।)

मुंशी :

पोस्ट आफिस पर बैठके ख़त लिखना शुरू किया तो जाना कि अपने देस में दुख बहुत हैं।

राजा :

धीरे बोल। नहीं तो दुख साले पर भी टैक्स लग जायेगा।···

अली अमजद लिखते-लिखते रुक गया। उसने आख़िरी संवाद कई बार पढ़ा···

फिर उसने आख़िरी संवाद को काट दिया। उसकी जगह उसने दूसरा संवाद लिखा।

राजा :

चलो मुंशी सड़क। कोई चीज तो साली जियास्ती है देस में।

उसने इस संवाद को भी काट दिया। उसने तीसरा संवाद लिखा है।

राजा :

अरे दुख-सुख तो सब तकदीर का चक्कर है मुंशी सड़क। तुम साला ख़त लिखे जावो और अपने पचीस पैसे सीधे किये जाव !

यह भी नहीं जँचा। उसने चौथा संवाद लिखा।

राजा :

तुम साला मुंशी सड़क है। कोई भगवान नहीं है। तुम साला ख़त लिख रहा है। तगदीर नहीं लिख रहा है।

(मुंशी सड़क राजा की तरफ़ देखता है और थूक लगाकर अबुलख़ैर की माँ का लिफ़ाफ़ा बन्द कर देता है।)

(कट)

सीन ख़त्म हो गया।

रात बाक़ी थी। कमरे के अन्दर और बाहर गयी रात का सन्नाटा उसी तरह था। खजूरों का झुण्ड चुप था। पुराने क़िले का खँडहर चुप था।

अली अमजद ने 'सीन :७५' को पढ़ा। कटी हुई लाइनों को पढ़ा। फिर

डिज़ाल्व

अली अमजद के मरने की खबर किसी पत्र में नहीं छपी, क्यों कि ज़िन्दगी ही की तरह उसने मरने के लिए भी बुरा वक़्त चुना। सवेरे के साढ़े तीन बजे मरना बड़ी बेवकूफ़ी की बात है। 'स्टाप प्रेस' समाचार में भी जगह नहीं मिल सकती।

उसके नौकर फर्नांडिस को साढ़े तीन बजे के करीब ऐसा लगा कि जैसे कोई उसे पुकार रहा हो। उसे जागने में कुछ देर लगी। वह जागा तो आवाज़ बन्द हो चुकी थी। वह फिर सो गया।

साढ़े दस के आस-पास जब वह चाय की प्याली लेकर अली अमजद के कमरे में गया तो उसने देखा कि वह पलंग से नीचे गिरा हुआ है।

फ़र्नांडिस की जगह कोई और नौकर रहा होता तो उसके हाथ-पाँव फूल गये होते। पर फर्नांडिस समझदार आदमी था। पेरी मेसन, कार्टर ब्राउन, अगाथा क्रिस्थी, आएन फ़्लेमिंग, पीटर शेनी···गरज कि वह उन तमाम लेखकों को पढ़ चुका था जिनकी कहानियाँ चुरा-चुकाकर अली अमजद और दूसरे कई लेखक मशहूर फ़िल्मी लेखक बन चुके थे। वैसे तो वह मंगलोरियन था। परन्तु हिन्दी के एक लेखक के यहाँ नौकरी करने के कारण उसे भी साहित्य का चस्का पड़ गया था। वह अक्सर सवेरे की चाय पिलाते हुए या रात का खाना खिलाते-खिलाते अपना एक-आध 'आइडिया' अपने 'साहिब' को सुना दिया करता था। उसकी हर कहानी शुरू एक ही तरह से होती थी, "साहब, रात नींद नई आता था। तो एक ऐडिया आ गया···बिल्कुल हटके है ये ऐडिया।···" अली अमजद चुपचाप सुनता रहता। इसीलिए तो वह अली अमजद से प्यार करने लगा

फन्दा पटयालवी, रामनाथ बनारसी और कमाल अमरोहवी ने
साना चाहा, पर वह किसी के चक्कर में नहीं आया। 'सहिबा
साला प्यार करनेवाला सेठ अक्खा बम्बई कैयसा, साला अक्खा
में नहीं है...' उसे एकदस सौ दस रुपये महीने की नौकरी कुबुल थी।
ह अपने सहिबा को छोड़ने पर तैयार नहीं था।...

रामनाथ बनारसी के पास एक मरसिडीज़ कार और एक चौबीर
स की प्राइवेट सेक्रेट्री थी—जो उर्दू-हिन्दी नहीं जानती थी। पर ख
मनाथ उर्फ पीटर बनारसी भी यूँही-सी हिन्दी-उर्दू जानता था
र्नांडिस को वह सेक्रेट्री अच्छी भी लगती थी। जो वह रामनाथ बना
के साथ टीम बना लेता तो शायद वह भी एक कार और एक सेक्रेट्री रख
लेता। फन्दाजी ने तो उसे हज़ार रुपये महीने की नौकरी भी ऑफ़र की,
पर फन्दाजी में वह सहिबावाली बात नहीं थी। वह अली अमजद के लिए
माउंट मेरी और माहिम चर्च पर नोवीना करता। हर संडे को कैंडिल
जलाता और उसे अपनी कहानियाँ सुनाता और जब अली अमजद आखिर
में मुस्कुरा देता तो फ़र्नांडिस की जिन्दगी का कोई मतलब निकल आता...

इसलिए जब फ़र्नांडिस ने यह देखा कि उसका सहिबा उसे छोड़ गया तो
पहले उसे यक़ीन ही नहीं आया कि सहिबा ऐसी धोकाधड़ी भी कर सक
है। उसका जी चाहा कि वह सहिबा को झिंझोड़कर पूछे कि उसने ऐ
धोकाधड़ी क्यों की। परन्तु वह चेज़ और पेरी मेसन और किस्थी को
चुका था। इसलिए उसने कमरे की किसी चीज़ को हाथ नहीं लगाया

वह किचन में बैठकर रोने लगा। जासूसी उपन्यासों में उसने य
था कि पहले पुलिस को फोन करना चाहिए। पर पेरी मेसन
उपन्यासों में पहले पेरी मेसन को फोन करते हैं। तो पेरी मेसन क
वी. डी. मर चुका है। अलीमुल्लाह के पास फोन नहीं है।
हरीश। और उसकी जिस फिल्म का प्रीमियर है, उसका ना
'पलकों की छाँव' है, पर वह पेरी मेसन ही की एक कहानी से
कहानी है। 'द केस ऑफ़ द क्रूकेड नोज़'...

तो फ़र्नांडिस ने हरीश को फ़ोन किया, "साब ! सहिब
गया।"

हरीश सन्नाटे में आ गया। पलंग पर पड़ी हुई नंगी लड़की ने एक सिगरेट जलायी। यह कोई नयी लड़की थी। हरीश की किसी बननेवाली फिल्म की साइड हीरोइन।

हरीश ने उसकी तरफ़ देखा। उसके नंगे बदन पर आँखें फेरीं। गुज़री हुई रात का मज़ा ताज़ा हो गया।

"पुलिस को फ़ोन कर दें साब?" उधर से फर्नांडिस ने पूछा।

"नहीं।" हरीश ने कहा, "पुलिस को मैं फ़ोन करूँगा। मैं अभी आता हूँ।"

बात खत्म हो गयी।

हरीश चक्कर में पड़ गया। यदि अली अमजद के मरने की खबर फैल गयी तो प्रीमियर चौपट हो जायेगा।

"म्राव न डार्लिंग।" नंगी लड़की बोली, जो जागने के बाद से अब तक न जाने कितनी बार, दिल-ही-दिल में हेमा मालिनी बन चुकी थी।...

हरीश ने कोई जवाब नहीं दिया। उसे प्रीमियर की फ़िक्र थी।

अली अमजद उसका दोस्त था।

उसने असिस्टेंट इंस्पेक्टर जोग को फोन किया, "यार जोग साहब, एक बड़ा चक्कर हो गया।"

"क्या वह मैरिड निकली?" जोग ने पूछा।

हरीश हँस दिया।

"वह बात नहीं है।"

"फिर? बाई द वे, प्रीमियर के दो कार्ड और मिल सकते हैं?"

"मुझे तो प्रीमियर ही होता नहीं दिखायी देता।"

"क्यों?" नंगी लड़की ने पूछा।

"ओह! शट अप।"

"व्हाट?" जोग ने पूछा।

"यार, यह लड़कियों को अक्ल कब आयेगी?"

"नो होप।" जोग ने कहा, "लड़कियों को अक्ल आ जाये तो सरकार फैमिली प्लानिंग पर खर्च होनेवाले करोड़ों रुपये बचा ले।" जोग अपने मज़ाक पर जी खोलके हँसा।

ी अमजद से मिलाया था न मैंने तुमको ?"

ह राइटर ?"

हाँ !"

हाँ-हाँ यार, याद आ गया। वड़ा मज़ेदार आदमी है।"

"उसी का तो चक्कर है।" हरीश ने कहा, "आज ही प्रीमियर

वह मर गया। समझ में नहीं आता क्या करूँ ?"

"मर कैसे गया ?"

"पता नहीं। मैं अभी वहीं जा रहा हूँ।"

"कहाँ जा रहे हो ?" नंगी लड़की ने पूछा।

"मैं भी आता हूँ।" जोग ने कहा।

"मैं कोई आधा घण्टे में पहुँचूंगा। अभी शेव तक नहीं किया है।"

बात खत्म करके हरीश सीधा बाथरूम की तरफ़ भागा। दाढ़ी बनाये विना घर से वाहर न निकलना उसकी ज़िन्दगी का उसूल नम्बर एक था। उसकी ज़िन्दगी का कोई और उसूल था ही नहीं।

फिर वह यह भी जानता था कि अली अमजद की मौत पर उसे कोई-न-कोई वयान भी देना पड़ेगा। और एक मरतवा घर से निकलने के वाद उसे सोचने का मौका मिलनेवाला नहीं। यह वह अच्छी तरह जानता था।

आईने में उसने अपने चेहरे को उदास वनाकर देखा। उसे अपन उदास चेहरा अच्छा नहीं लगा। उसने आँखों को और उदास कर लिया।

अली अमजद मरा नहीं, कत्ल किया गया है। और उसे कत्ल कि है इस जालिम समाज, वेमुरव्वत हालात और इस वेदर्द फिल्म इण्ड ने...

उसने गरदन झटक दी। वयान का यह स्टाइल उसे अच्छा नहीं ल

मेरा दोस्त अली अमजद एक आदमी की तरह जिया और हिन्दी फिल्म की तरह विला वजह, खत्म हो गया।...

दाढ़ी बनाते-वनाते उसने अपना वयान तैयार कर लिया। और जब वह अली अमजद के फ्लैट में दाखिल हुआ तो वह विल्कुल नहीं था।

फर्नांडिस रो रहा था।

फिर जोग आ गया। और तब हरीश उसके साथ अली अमजद के बेड-रूम में गया।

अली अमजद पलंग के नीचे पड़ा हुआ था।

"मर चुका है।" जोग ने कहा।

हरीश ने अली अमजद की लाश की तरफ देखा।

"फ़िकर न करो।" जोग ने कहा, "मैं पोस्टमार्टम नहीं होने दूंगा।"

"नहीं।" हरीश ने कहा, "दोस्ती अपनी जगह है। कानून अपनी जगह है। पोस्टमार्टम जरूर करवाव।"

हरीश यह सोचकर घबराया था कि जो पोस्टमार्टम न हुआ तो ठीक प्रीमियर के समय अली अमजद के दफन-कफन हो रहा होगा और वह अली अमजद के दफन-कफन को मिस नहीं करना चाहता था। "आफ्टर आल, यह मेरे दोस्त की लाश है।" उसने अपने-आपसे कहा, "ऐंड फ़र्दर-मोर, अली अमजद कभी यह न चाहता कि उसकी वजह से 'लाशों की छाँव' का प्रीमियर न हो जब कि गुजराल साहब खास इस प्रीमियर के लिए दिल्ली से आ रहे हैं···और प्रीमियर के बाद 'ताज इंटर कांटिनेंटल' में कॉकटेल पार्टी है!"

"तुम्हारी मरजी।" जोग ने कहा, "फोन किधर है?"

"किचन में।"

जोग ऐम्बुलेंस के लिए फोन करने चला गया। और जब ऐम्बुलेंस आयी तब 'सुरसिंगार हाउसिंग सुसायटी प्राइवेट लिमिटेड' के लोगों को पता चला कि अली अमजद मर गया है।

रमा चोपड़ा फ़ौरन फोन घुमाने बैठ गयी। पहला फोन उसने मिसेज़ मिढा को किया, "एक गम सुनो, मैं कहा, अली अमजद डाइड। लिग। लास्ट नाइट।" और फिर वह सचमुच रोने लगी।

रमा उस अली अमजद के लिए रो रही थी जो उसका कोई नहीं था, "हाय बिचारा। सोणा मुंडा था···"

घटकजी तौलिया बाँधे बाथरूम से निकल आये। उन्होंने रमा की बात काटके मनचन्दानी का नम्बर डायल किया, "हलो।"

"हलो।" उधर से मिसेज़ मनचन्दानी बोलीं।
"वह तुम्हारा किरायादार रात मर गया।"
"क्या ? कैसे मरा ?"
"कैसे भी मरा हो। मुझे वह फ्लैट चाहिए। वेचना हो तो वेच दा।
राये पर देना हो तो वह भी चलेगा। पगड़ी लेनी हो तो वह कहो।...
क है। नहीं, शाम को नहीं। शाम को तो कफ़न-दफ़न में जाना पड़ेगा
ल सवेरे मिलता हूँ..."
"शरम नहीं आती ?" रमा ने कहा, "वह विचारा तो मरा पड़ा
और तुम फ्लैटाँ दी गल कर रहे हो !"
"तुम्हें इतना दुख क्यों हो रहा है उसके मरने का...?"
"आशिक़ था न मेरा।"
"क्या पता, रहा ही हो..."
फ़ोन की घण्टी वजी। खटकजी एकदम से भोलेनाथ वन गये।
"हलो।" उन्होंने प्यार से कहा।
"जी, मैं रामनाथ वनारसी वोल रहा हूँ। यह अली अमजद के वा
में क्या सुन..."
"खुद फ्लैट से निकलकर देख क्यों नहीं लेते ?" वह भोलेनाथ
खटकजी वन गये। रमा से वोले, "उस हरामी दा पुत्तर के वास्ते अ
घरां विच रोणा-धोणा नहीं होयेगा..."
वह तौलिया वांधे-वांधे वाहर चले गये। वाहर सुसायटी के कई
खड़े थे। अली अमजद ही की वात हो रही थी। 'सुरसिंगार हा
सुसायटी प्राइवेट लिमिटेड' के पन्द्रह वरस के इतिहास में आत्महत्य
या शायद सीधी-सादी साधारण मृत्यु की यह पहली मिसाल थी।
इतने लोगों को देखकर खटकजी फिर अन्दर लपक लिये।
की शर्ट और जैतूनी वेलवाटम पहनकर, पांच सौ पचपन की ए
दवाये वह फिर आ गये।
वही लोग वहीं खड़े थे। और वातें यह हो रही थीं कि अ
के घर से कोई तो आयेगा। क़ालीन अच्छा है। और उस क़ा

लोगों की निगाह थी।

रमाजी अन्दर सचमुच रो रही थी, उस तक भी कालीन की बातें आ ही गयी। उसने दरवाजा खोलकर, रोयी हुई लाल आंखों से लोगों की तरफ देखा।

"उस कालीन की बात तो दो दिन हुए, मैं भाई साब से कर चुकी थी, वह कहते रहे कि मैं बहन से दाम नहीं लूंगा। मैं टिकी रही कि दाम तो मैं जरूर दूंगी। आठ सौ पर बात ठहर गयी थी।"

"रमा से तो स्वर्गीय अली अमजद को बड़ा प्यार था। क्या आदमी था साहब! मुसलमान लगता ही नहीं था।...अभी कोई दस-बारह दिन हुए, एक कटग्लास का बाज़ है ना ड्राइंगरूम में, मैंने तारीफ कर दी। बस, सिर हो गये कि ले जाओ...मैंने बहुत टाला। पर वह ज़िद कर गये। तो मैंने कहा, अच्छा अपनी वर्षगांठ पर ले लूंगा।"

"बाज़ साला तो अपन से गिरके टूट गया।" फर्नांडिस ने आंसू पोंछते हुए कहा, "दू महीना से बेसी हुआ।"

मिसेज़ वर्मा के सिवा किसी ने खटक की तरफ नहीं देखा। पर सब चुप जरूर हो गये। ठीक उसी वक्त ऐम्बुलेंसवाले, जोग के पीछे-पीछे स्ट्रेचर पर अली अमजद की लाश लेकर निकले और 'सुरसिंगार हाउसिंग सुमायटी प्राइवेट लिमिटेड' के लोगों के बीच से गुज़र गये। तब हरीश निकला।

"फ़र्नांडिस, घर का खयाल रखना। लाश तो कल दोपहर से पहले नहीं मिलेगी..."

"जी साब।"

"दफन-कफन तो कल शाम ही को होगा।"

"जी साब।"

"मैंने तो बड़ी कोशिश की कि लाश का पोस्टमार्टम न हो।" हरीश ने सुमायटीवालों से कहा, "जोग मेरा दोस्त भी है। पर अपनी नौकरी को खतरे में तो नहीं डाल सकता। बोला कि मरनेवाला मशहूर आदमी था। उसकी आत्महत्या की ख़बर छिप नहीं सकती।"

तमहत्या ?" कई लोग एकसाथ वोल पड़े।
श ने जवाव देना मुनासिव न जाना। वह कन्धे झटककर आगे वढ़
र तेजी से सीढ़ियाँ उतरता सड़क पर आ गया।
ामने सागर ठहरा हुआ था। दो-तीन वच्चे एक-दूसरे के आगे-पीछे
रहे थे और हरीश की 'नोवा' अपनी चमचमाती लाल पालिश में सागर
र खड़ी हुई थी। और वह अली अमजद से फ़ारिग़ हो चुका था।
हरीश को, यकायक, 'पलकों की छाँव' के प्रीमियर ने दवोच लिया।
ा नहीं यूसुफ साहव आयेंगे या नहीं ! तय यह हुआ था कि दिलीपकुमार
मेहमानों से 'पलकों की छाँव' के युनिट का परिचय करवायेंगे। धर्मेन्द्र,
ाजेश खन्ना और अमिताभ वच्चन को भी सँभालना पड़ेगा। धर्मेन्द्र तो
ैर फिर भी सादा आदमी है। हँसमुख। आमतौर से वुरा न माननेवाला।
अमिताभ का भी ऐसा प्रावुलम नहीं था। पर राजेश खन्ना ? इनफ़ीरिया-
रिटी कमप्लेक्स है कमवख्त को···

हरीश ने कार स्टार्ट कर दी।

प्रीमियर नौ वजे रात को था।

सात ही वजे से भीड़ लगने लगी। पहले पुलिस आयी। फिर लोग
आये। तमाशाई स्टारों की कारें पहचानकर घिराव करने लगे···कि एक
ेक्सी रुकी। खटक और मिसेज़ खटक। खटकजी ने सूट पहन रखा थ
ार रमा के गले में हीरे का वह पेंडेंट जगमगा रहा था जो उसने ख़ा
इसी मौके के लिए मिसेज़ मिढा से उधार लिया था। मिस्टर वर्मा न
आये। मिसेज़ वर्मा आयीं। तोलाराम दलाल अपनी सिक्रेट्री समेत आय
रामनाथ वनारसी आया। पंचारण मिश्र आये। अलीमुल्लाह आया।
वह तमाम लोग आये जिन्होंने अली अमजद के ज़रिये प्रीमियर के इन
शन प्राप्त किये थे···

सारा हाल खचाखच भरा हुआ था। वस, एक कुरसी खाल
परन्तु भीड़-भड़क्के में किसी ने उस खाली कुरसी की तरफ़ ध्या
दिया। वह कुरसी फिल्म के पटकथा लेखक सैयद अली अमज
तिरमिज़ी वारहवंकवी की थी !

"अली अमजद नज़र नहीं आया ?" कॉकटेल पार्टी में अ

ने हरीश से पूछा।

"हाँ।" हरीश ने कहा, "वह कल रात किसी वक़्त मर गया।" यह कहते-कहते वह एकदम से मुस्कुरा दिया, क्योंकि एक फोटोग्राफर पास खड़ी हुई हेमामालिनी के साथ उसकी तस्वीर ले रहा था।

फ़ेड भ्राउट